VISHVA–JYOTI

ISSN 0505-7523

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2024 TO 31.12.2026)

R.N. No. 1/57

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)
(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

74वां वर्ष, अंक 6, सितम्बर 2025

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49-बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ-13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी-7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

डॉ. नरसिंह चरण पंडा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डायरैक्टर, IQAC, केन्द्रीय विश्वविद्यालय ओड़िशा, कोरापुट, ओड़िशा।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, चेयरमैन, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223606, मो. 7973153462

सह–सम्पादक : 98178–36664, विश्व–ज्योति विभाग : 01882–223582

E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,

vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : 3 डालर.

विषय-सूची

लेखक	विषय		पृष्ठांक
डॉ. मृगांक मलासी	सृष्टि उत्पत्ति : वेद एवं विज्ञान के संदर्भ में	लेख	7
श्रीमती राजकुमारी	भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकार-स्वरूप व संख्या	लेख	17
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	ग्रीष्म ऋतु में आहार-विहार	लेख	27
डॉ. निर्मल कौशिक	भारतीय सनातन संस्कृति में 'गाय का महत्त्व'	लेख	32
मुनि सत्यदेव	न्याय दर्शन के अनुसार 'बन्धन और मोक्ष' - विचार	लेख	35
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	हिन्दी साहित्य में राम काव्य की परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास	लेख	39
श्री ताराचन्द आहूजा	बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा	लेख	43
डॉ. सीताराम गुप्ता	ईमानदारी स्वयं में ही एक बहुत बड़ा पुरस्कार है	कहानी	46
प्रो. प्रेम लाल शर्मा	पुस्तक-समीक्षा		49-51
श्रीमती शशिप्रभा कुकरेती	गर्मी का ताड़व	कविता	52
	पुण्य-पृष्ठ		53-54

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७४ होश्यारपुर, श्रावण २०८२; सितम्बर २०२५ संख्या ६

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान्,
यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु,
वयं सर्वेषु यशसः स्याम ।। (अथर्ववेद, ६.५८.२)

भूमि और आकाश में इन्द्र देवता की महिमा हो रही है । जैसे ओषधियों में जल देवता की महिमा हो रही है, वैसे (ही) सभी देवताओं के मध्य में हम (भी) यश वाले हों ।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

श्रुति-विप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधाव् अचला बुद्धिस् तदा योगम् अवाप्स्यसि ।।

(गीता, २.५३)

(हे अर्जुन) शास्त्र (की उलझनों) द्वारा निश्चय पर न पहुंच पा रहीं तुम्हारी बुद्धि जब (मनन और अनुभव द्वारा) ठीक स्थिति पर सर्वथा स्थिर हो सकेगी, तभी (तुम ऐसा समझना कि अब मैं) योग पद पर आ पहुंचा हूँ ।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७४, सं. ६
सितम्बर ,२०२५

सृष्टि उत्पत्ति : वेद एवं विज्ञान के संदर्भ में

- मृगांक मलासी

मानव मस्तिष्क प्रारम्भ से ही खोजी प्रवृत्ति का रहा है। भारत वर्ष में तो यह परम्परा अनादि काल से व्याप्त है। सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से हुई? कैसे हुई? किसके द्वारा की गयी आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनके समाधान के विषय में मानव ने कई शताब्दियों से प्रयास किया है। आज के वैज्ञानिक युग में जहाँ चन्द्रमा, मंगल जैसे ग्रहों में जीवन खोजकर वहाँ बसने तक को व्यक्ति व्यग्र है, ऐसे प्रश्नों का हल ढूँढना व्यक्ति ने तेज कर दिया है कि पृथिवी के अतिरिक्त कहाँ-कहाँ जीवन है। दो-चार दशाब्दियों में हुए विकास के आधार पर वैज्ञानिकों ने विश्वोत्पत्ति के बारे में कतिपय सिद्धान्त भी प्रस्थापित किए हैं। आश्चर्य यह है कि जगत् के प्राचीनतम वाङ्मय ऋग्वेद में वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्थापित ये सिद्धान्त ठीक उसी प्रकार से अंकित हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सबसे पहले मन्त्र में ही कहा गया है कि उस समय अर्थात् विश्वोत्पत्ति होने के पूर्व काल में न असत् था और न ही सत् था। उस समय रज अर्थात् लोक या कण नहीं थे। आकाश भी नहीं था और अन्य कुछ भी नहीं था। ऐसी स्थिति में कौन सा आवरण उत्पन्न हुआ? और, कहाँ से? किसके भले के लिए? गहन और गंभीर ऐसा शब्द करने वाला क्या था[1]?

विश्व उत्पन्न होने के पूर्व सत् नहीं था। सत् का अर्थ जो पदार्थ विद्यमान है वे सभी। आज का कोई भी पदार्थ उस समय अस्तित्व में नहीं था। असत् अर्थात् जो कभी नहीं होता। आज के सब विद्यमान पदार्थ जैसे कि आकाश, वायु, जल, सूर्य, पृथिवी इत्यादि सत् है। प्रथम सत् शब्द का निर्माण हुआ और उससे 'अ' यह नकारात्मक उपपद लगाकर 'असत्' शब्द निर्मित हुआ। सत् वस्तु पर कल्पना किये बिना असत् वस्तु निर्माण नहीं हो सकती। जगत् उत्पत्ति के पूर्व इस प्रकार की सत् या असत् कोई भी वस्तु अस्तित्व में नहीं थी। ऋषि बताते हैं कि उस समय रज भी नहीं था रज अर्थात् लोक। भूलोक सर्व परिचित है। इससे लोक का अर्थ स्पष्ट होता है कि जहाँ केवल लोक अर्थात् सजीव प्राणी रह सकते हैं, उसे लोक कहते हैं। सजीव प्राणी विद्यमान रहने के लिए एक पृथिवी समान ग्रह तथा एक शक्ति देने वाला सूर्य आवश्यक है। सूर्य तथा ग्रह मिलाकर उसे सूर्यमाला कहते हैं। सूर्यमाला के लिए ऋषि ने 'लोक' शब्द का उपयोग किया है। इस प्रकार के लोक या सूर्यमाला जगत् उत्पत्ति के समय नहीं थे।

विश्वोत्पत्ति से पूर्व कोई भी कण (Particles) अस्तित्व में नहीं थे।

वैदिक मान्यता के अनुसार जगत् उत्पत्ति के समय आकाश नहीं था। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस पर कोई विचार नहीं किया तथापि ऋषियों ने आकाश तथा मूल वायु का अस्तित्व मानकर आगे का सोचा है। प्रश्न उठता है कि आकाश या अन्य कोई वस्तु नहीं थी तो किसने आवरण उत्पन्न किया? वह आवरण कहाँ उत्पन्न हुआ। इनका समाधान करते हुए ऋषि कहते हैं कि अचानक एक पदार्थ उत्पन्न हुआ जिसने कोई जगह आवृत्त की। किसी एक ही जगह पर वह पदार्थ उत्पन्न हुआ। उस पदार्थ के उत्पन्न होने में कोई समय नहीं लगा। विज्ञान के अनुसार भी पहले पदार्थ उत्पन्न हुआ जिसकी उत्पत्ति में अधिक समय नहीं लगा। ऋषि के अनुसार किसी एक जगह पर आवरण उत्पन्न हुआ। आधुनिक विज्ञान में स्पष्टत: इस प्रकार का विचार नहीं है किन्तु परोक्षत: माना है। डॉ. हबल ने यह सिद्ध किया है कि गैलेक्सीज एक दूसरे से दूर जा रही है। रेडियल व्हिलॉसरीट का अभ्यास कर डॉ. हबल ने यह सिद्ध किया है कि आकाशगंगा (गैलेक्सीज) की गति साठ हजार मील प्रति सेकेण्ड है। एक सेकेण्ड में गेलेक्सीज साठ हजार मील दूर जा रही है तो भूतकाल में एक सेकेण्ड में वह साठ हजार मील निकट होना चाहिए। एक सेकेण्ड में हम भूतकाल में जायेंगे तो गेलेक्सीज साठ हजार मील निकट होनी चाहिए। इस प्रकार भूतकाल में हमें एक ऐसा क्षण मिलेगा जब सब गैलेक्सीज एक ही स्थान पर रहे होंगे। इसी स्थान का निर्देश ऋषि करते हैं। डॉ. गैमॉव ने भी यही माना कि दो बिलियन (अब्ज) वर्षों पहले गैलेक्सीज इतनी निकट होगी कि सब तारे इकट्ठा रहे होंगे।

'उस समय लोक नहीं थे' यह ऋषि कथन आधुनिक विज्ञान को भी स्वीकार है, क्योंकि रेडियम तथा थोरियम जैसे रेडियो ऑक्टिव्ह मूल द्रव्य का चट्टानों में स्थित प्रमाण देख यह सिद्ध हो चुका है कि पृथिवी का कवच 1.6 अब्ज (बिलियन) वर्षों पहले बन गया है। इस प्रकार यह सिद्ध हो चुका है कि दो अब्ज वर्षों पहले पृथिवी लोक नहीं था। अन्य तारों का अभ्यास कर शास्त्रज्ञों ने यह प्रमाणित किया है कि चार अब्ज वर्षों पूर्व तारे हुए हैं। सूर्य भी चार अब्ज वर्षों पूर्व अस्तित्व में आया है। इस प्रकार यह सिद्ध हो चुका है कि चार अब्ज वर्षों के पूर्व काल में किसी लोक का निर्माण नहीं हुआ था, ग्रह और तारे भी नहीं थे। विज्ञान के अनुसार सूर्य प्रतप्त वायु का एक गोला है। किन्तु यह वायु विरल पदार्थ है ऐसा मानना भूल है। पृथिवी पर स्थिति ऐसी है कि वायु पानी से विरल होना चाहिए। यही सत् है परन्तु सूर्य पर दश अब्ज वातावरण का दबाव होने के कारण सूर्य के केन्द्र में स्थित वायु इतने दब जाते हैं कि उस वायु की घनता पारद से छः गुना अधिक होती

है। सूर्य के वायु की साधारण घनता पानी से 1.41 गुना अधिक होती है। पानी तथा पारद से अधिक घन पदार्थ वायु हो सकती है? क्या यह सत्य है? नहीं। इसी कारण ऋषि कहते हैं कि उस समय सत् और असत् दोनों अस्तित्व में नहीं थे।

वैज्ञानिक गैमॉव कहते हैं प्राचीन काल में जो पदार्थ फैला हुआ था उसकी साधारण घनता पानी की घनता से 10-22 अंश थी। इतने पतले पदार्थ को क्या कहें ? सत् या असत् ? वायु या द्रव ? कोई नाम देना संभव नहीं है। इस कारण शास्त्रज्ञों ने उसका नाम येलेम रखा। येल विद्यापीठ के आद्याक्षर तथा उसमें कार्य करने वाले दो शास्त्रज्ञों के आद्याक्षर मिलाकर यह नाम बनाया है। यह नाम अवैज्ञानिक है। परन्तु इसी पदार्थ को ऋषि द्वारा दिया गया अम्भ नाम वैज्ञानिक है क्योंकि अम्भ धातु का अर्थ है आवाज करना। इसलिए आवाज करने वाले पदार्थ का नाम अम्भ रखा है। उस पदार्थ की घनता 10-22 थी, इतना विरल पदार्थ जरूर हिलेगा और हिलने के कारण आवाज उत्पन्न करेगा। इस कारण अम्भ नाम उस मूल पदार्थ को ऋषि ने दिया है। संस्कृत में अम्भ का अर्थ जल बताया गया है। सूक्त में प्रथम पंक्ति में बताया है कि उस समय सत् नहीं था। जल सत् है तो जल का अस्तित्व उस समय नहीं था। फिर जल अर्थ लेने का क्या औचित्य है? उस मूल पदार्थ को नया अर्थपूर्ण अम्भ नाम ऋषि ने दिया है। अम्भ बहुत गहन और गम्भीर था क्योंकि विश्व में सब ओर वह फैला हुआ था, यह विज्ञान ने भी माना है।

उस समय मृत्यु नहीं थी। अमृतत्व भी नहीं था। दिन या रात्रि की जानकारी देने वाला कोई चिह्न नहीं था। वह वायु के बिना स्वयं की शक्ति के बल पर श्वसन कर रहा था। उस एक के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था[२]। मृत्यु लोक नहीं था। सजीव प्राणी नहीं थे, इस कारण मृत्यु भी नहीं थी। दिन-रात्रि का कोई चिह्न नहीं था। यह ऋषि वाक्य पूरा वैज्ञानिक सत्य है क्योंकि इस समय सूर्य और ग्रह नहीं थे। रात्रि और दिन होने का कारण ग्रह का घूमना है यह ऋषि को ज्ञात था। इसीलिए ऋषि ने कहा कि वह एकमेव अपनी ही शक्ति से वायु के बिना श्वसन कर तहा है। डॉ. जार्ज गैमॉव स्पन्दनशील तारों का अभ्यास कर अपनी पुस्तक Birth and Death of Sun में लिखते हैं डॉप्लर परिणाम से निरीक्षण करने पर सिद्ध हो गया है कि सेफॉइड तारे सचमुच में श्वसन करते हैं अर्थात् उनके पृष्ठ भाग ऊपर और नीचे होते रहते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि जागतिक कीर्ति वाले डॉ. गैमॉव श्वसन की उपमा देते हैं और प्राचीन ऋषि भी श्वसन की उपमा देते हैं। इस उपमा से कोई यह समझ सकता है कि श्वसन के लिए वायु आवश्यक है अतः उस समय वायु अवश्य होगी। इसी शंका का समाधान इससे स्पष्ट होती है कि वह श्वसन वायु के बिना चल रहा था। उस समय वायु नहीं था। वह एकमेव कुछ था, अन्य कुछ भी नहीं था।

ऋषि कहते हैं कि वह स्वयं की शक्ति से श्वसन करता था। डॉ. गैमॉव वही बताते हैं आणबिक और गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के मध्य होने वाला अंतर्गत संघर्षण ही स्पंदन का कारण है। 'उस समय वह एकमात्र था' यह ऋषि वाक्य आधुनिक विज्ञान भी मानता है। गैमॉव कहते हैं कि उस काल वायु की एक अखण्ड परत ही जमा हुई थी और उसी में से तारे तथा आकाशगंगाओं का प्रादुर्भाव हुआ। सर जॉन लॉवेल का कथन है कि संसार की उत्पत्ति के समय प्रथम आग का एक ही गोला था।

नासदीय सूक्त में आगे के मन्त्र में ऋषि कहते हैं कि संसार की शुरुआत में अन्धकार था। तम में व्याप्त गूढ़ था। उसके सम्बन्ध में कोई जानकारी मिलना असंभव थी। वह सलिल था। आसमन्त से उत्पन्न होने वाला 'आभु' तुच्छ हलकी वस्तु से ढका हुआ था। वह एक ऊष्णता के माहात्म्य से उत्पन्न हुआ[3]। उस समय अन्धकार था। यह तो बिल्कुल सत्य है; क्योंकि सभी आधुनिक वैज्ञानिक मानते हैं कि उस समय तारे नहीं थे। अत: प्रकाश भी नहीं था।

हेल्महोल्ट्स से सभी वैज्ञानिक सहमत है कि प्रारम्भ में सब तारे ठंडे थे और प्रकाश नहीं दे रहे थे। इस कारण वह अँधेरे में गूढ़ था। ऋषि के अनुसार वह सब सलिल था। उसमें हलचल थी, लीला थी इसलिए वह सलिल था। गैमॉव भी कहते हैं कि विश्व के आरम्भ में सब तारे विरल थे और उस समय संसार में अखण्ड वायु की एक परत ही जमा होगी। उसके बाद वायु के भीतर का समतोल बिगड़ जाने के कारण वायु की वह अखण्ड परत खण्डित हुई और उसकी अलग-अलग गुठलियाँ बनी। इन्हीं गुठलियों से आज के तारों की निर्मिति हुई है। उस वायु की पर्त में जो हलचल हुई उसी को लीला कहते हैं और इसी कारण वह सब सलिल था।

उपर्युक्त वर्णित वायु की गुठलियों का नाम आज के विज्ञान में गेस ड्रॉप (Gas Drop) रखा है किन्तु ऋषि ने उसी को 'आभु' नाम दिया है। 'आसमन्तात् भवति इति आभु'। फैले हुए वायु से बना हुआ था इसलिए उसे 'आभु' कहा गया। Gas Drops का वस्तुमान 1030 किलोग्राम के आसपास था और उसका ब्यास दो-तीन प्रकाश वर्ष इतना विशाल था। प्रति सेकण्ड 187000 मील तथा 300000 किलो मीटर की गति से एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी तक जाता है उसे एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। ऋषि कहते हैं कि 'तुच्छ्येन आभु आहिपिहितम्' तुच्छ या हलकी वस्तु से आभु आच्छादित था, ढका हुआ था। आधुनिक विज्ञान ने यह विचार मान्य कर दिया है। वैज्ञानिकों के अनुसार इन गेस ड्रॉप्स में गुरुत्वाकर्षण कार्यरत होने के कारण वे संकुचित होते हैं और तारे बन जाते हैं। गुरुत्वाकर्षण के कारण आभु में जड़ वस्तु केन्द्र में जाती है और हल्की वस्तु बाहर की ओर रहती है। इसी कारण वह आभु तुच्छ वस्तु से

आच्छादित था, ऐसा ऋषि का कथन है।

आधुनिक विज्ञान मानता है कि प्रारम्भ काल में सब तारे विरले ठंडे होते हैं किन्तु बाद में गुरुत्वाकर्षण के जोर से वे प्रतप्त और प्रकाशमान बनते हैं।[4] उक्त तथ्य से ऋषि के कथन की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है कि 'तप के माहात्म्य से वह निर्मित हुआ'।

निस्संदेह वैदिक ऋषि त्रिकालदर्शी थे यह इससे भी समझा जा सकता है कि उन्होंने पूर्व में ही अनुमान कर लिया था कि इन मन्त्रों के तत्त्व को समझने में ऊहापोह सम्भव है अत: आगे नासदीय सूक्त में ही वे कहते हैं कि प्रथम जो मन में बीज रूप था, वही बाद में काम बन गया। उसी प्रकार सत् का कारण असत् में है, यह वस्तुस्थिति कवियों ने बुद्धि द्वारा विश्लेषित कर हृदय में जान ली है।[5] प्राणियों में काम बड़ा श्रेष्ठ है। परन्तु श्रेष्ठ काम की उत्पत्ति मन में स्थित सूक्ष्म बीज से होती है। इसी प्रकार विशाल विश्व की सत् की उत्पत्ति असत् से होती है, यह ज्ञान ऋषियों ने मन में विश्लेषण करने के बाद अंत:करण में प्राप्त किया है।

नासदीय सूक्त में वर्णित इस सृष्टि प्रक्रिया का भाव यह है कि जब इस सृष्टि की रचना नहीं हुई थी उस प्रलय अवस्था में सत्य अर्थात शून्य (आकाश) जो नेत्रों से नहीं दिखता वह भी नहीं था। उस समय में रज, तम एवं सत्त्व गुण युक्त प्रकृति भी अपने अव्यक्त रूप में थी। अर्थात् ईश्वर शक्ति द्वारा प्रेरित होकर प्रकृति संसार रचने को अभी प्रवृत नहीं हुई थी। इसी स्थिति को इस मंत्र ने कहा 'नासत् आसीत्' अर्थात् तीनों गुणों से युक्त प्रकृति से संसार रचने के लिए ईश्वर की स्वभाविक क्रिया जिसे ईक्षण कहते हैं, वह अभी नहीं थी। यजुर्वेद[6] में इस स्वाभाविक क्रिया (ईक्षण) के विषय में कहा गया है कि द्यौः पूर्वचित्ति अर्थात् जो अति सूक्ष्म विद्युत शक्ति है, वह सृष्टि रचना में प्रथम परिणाम है। परमात्मा की इस प्रथम परिणाम रूपी स्वाभाविक क्रिया (ईक्षण) को ही इन मंत्रों में कामः (संकल्प) कहा। ऐतरेयोपनिषद् में प्रकारान्तर से कहा गया है 'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति' अर्थात उस परमात्मा में ईक्षण (विचार) हुआ कि लोकों को रचूँ। भाव यह है कि सृष्टि रचना से पहले ईश्वर से अतिरिक्त आभु अर्थात् अव्यक्त प्रकृति थी, न आकाश था। उस समय परमाणु भी नहीं थे और न ही विविध पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड रूप जगत् का निवास स्थान ही था। अर्थात् अंतरिक्ष भी नहीं था। उस समय मृत्यु भी नहीं थी। क्योंकि जीवन भी नहीं था एवं शरीरादि बने ही नहीं थे। दिन-रात्रि भी नहीं बने थे। गहन और गंभीर समुद्र का जल भी नहीं था। केवल परमात्मा एवं 'आभु' नाम से अव्यक्त प्रकृति थी।

मंत्र में कहे 'कामः' (संकल्प) अर्थात् ईश्वर में स्वाभाविक क्रिया (ईक्षण) के उठते ही प्रकृति के तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम) मिलकर सृष्टि रचने को तत्पर हो जाते हैं। तब इस अवस्था

में यह तीनों तत्व मिलकर 'प्रधान' कहलाते हैं। अब प्रकृति से जो पहला तत्त्व सृष्टि रचना में बनता है, उसका नाम महत् तत्त्व है, जिसे बुद्धि भी कहते हैं। अब सृष्टि सर्ग प्रारंभ हो चुका होता है। अतः महत् से अहंकार, अंहकार से पञ्च तन्मात्राएँ और एकादश इन्द्रियाँ (अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं मन) तथा आकाश, वायु, जल, अग्नि एवं पृथ्वी वह पाँच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ईश्वर के ईक्षण मात्र से अव्यक्त प्रकृति द्वारा यह जगत् उत्पन्न हो जाता है।

नासदीय सूक्त में आगे कहते हैं -

तिरश्चीनः विततः रश्मिः एषाम् अधः
स्वित् आसीत् उपरि स्वित् आसीत्।
रेतोधाः आसन् महिमानः आसन्
स्वधा अवस्तात् प्रयति परस्तात्॥[७]

अर्थात् इसकी किरणें या धागे फैले। वे तिरछे थे या नीचे या ऊपर थे। वे बीज धारण करने लगे, विशाल बने। स्वयं को देने वाले, सम्भालने वाले निकृष्ट हुए। प्रयास करने वाले उत्कृष्ट हुए। रश्मि का अर्थ किरणे तथा धागे है। दोनों ही अर्थ यहाँ सत्य है। प्रथम जो आभु था उसमें ऊष्णता उत्पन्न हुई और प्रकाश बाहर निकल आया। प्रकाश सब ओर फैल जाता है, कोई एक ही दिशा में नहीं। प्रकाश किरण तिरछे, टेढ़े, नीचे-ऊपर कहीं भी जाते हैं। आभु एक पदार्थ से बना था। वह पदार्थ बहुत विरल था, उसमें हलचल थी, यह तो हमने देखा ही है। इसी कारण वह विरल पदार्थ फैल गया। बादलों से इस प्रकार कोई पदार्थ बाहर फैल जाता है। यह स्वयं भी अनुभूत किया जा सकता है। माउंट विल्सन से निकाले गए छायाचित्र में Gaseous Nebulae से फैले हुए पदार्थ के धागे अच्छी तरह दिखाई देते हैं। इस प्रकार धागे बाहर निकल आने के कारण उनका नाम Filamentary Nebulae रखा गया है। rsa Major, Canvis Venatici, Andromeda, Coma Berenices तथा Orion का Gaseous Nebula इन सबसे इस प्रकार धागे बाहर आते हैं तो ऋषि का कथन वैज्ञानिक सत्य सिद्ध होता है। फैले हुए पदार्थ में से कुछ अंश पदार्थ इकट्ठा आ गया और रेतोधा बन गया। उसने बीज धारण किया। बीज के निकट फैला हुआ पदार्थ खींचा गया और वह बड़ा हो गया। उसका आधार बढ़ने लगा जिसने प्रयत्न कर अन्य फैला हुआ पदार्थ अपने निकट जमा कर लिया।

जो रेतोधा स्वयं को ही देखते रहे अर्थात् जिन्होंने अन्य फैला हुआ पदार्थ खींचने का प्रयास नहीं किया, छोटे रह गए। स्वान् धारयति इति स्वधा। जिन्होंने स्वयं को दूसरे में समर्पित किया (स्वान् दधाति इति स्वधा) वे भी निकृष्ट हो गये। जर्मन विचारक कॉट के विचार भी इसी से प्रेरित है। कॉट का सिद्धान्त फ्रेंच गणितज्ञ पिअरी सायमन डी लाप्लासे ने सुधारित किया और बाद में जर्मन फिजिसिस्ट कार्ल व्हॉन वैझाकर तथा

कुइपर और टेरहार इन शास्त्रज्ञों ने उस पर ज्यादा कार्य कर उसे सिद्ध किया और वैश्विक मान्यता प्राप्त की। स्टीफन हॉकिंग ने भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और विकास के विषय में अपनी पुस्तक ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम में बताया है। बिल ब्रायसन द्वारा लिखित, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ नीयरली एवरीथिंग नामक पुस्तक में विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया गया है वैज्ञानिक प्रतिपादित करते हैं कि प्रथमतः सूर्य पर एक प्रतिशत भाग धूलि का है। धूलिकण चिपक जाने से घनीभूत हुए और शेष 99 प्रतिशत भाग जो वायुमय था, वह उत्प्रेरक जोर के कारण दूर निकल गया। जो घन भाग था उसने इधर-उधर फैले हुए धूलिकणों को आकर्षित किया और बड़ा हो गया। इस प्रकार ग्रह बन गए। वैज्ञानिकों ने यह भी निरीक्षण किया है कि छोटे गोलकों के बड़ों से टकराने से दोनों चिपक जाते हैं और बड़ा गोलक और ज्यादा बड़ा हो जाता है। इस छोटे गोलक को स्वधा और बड़े गोलक जो प्रयत्नशील है, उन्हें प्रयति नाम दिया गया है।

आकाशगंगा (गैलेक्सीज) में बहुत तारे रहते हैं। लेकिन गैलेक्सी प्रथम उत्पन्न हुई और उसका विभाजन होने से तारे निर्मित हुए, ऐसा मत सर जेम्स जीन्स का है। इससे विपरीत मत गैमॉव व्यक्त करते हैं कि प्रथम तारे निर्मित हुए और बाद में तारे इकट्ठा आकर गैलेक्सी बन गयी। सर लॉवेल का मत है कि प्रथम एक अग्नि गोल था जिससे तारे तथा गैलेक्सीज बन गए। शास्त्रज्ञों में अब तक मतैक्य नहीं है परन्तु लॉवेज के सिद्धान्त को अधिक मान्यता प्राप्त है। वेद ने तो पूर्व में ही स्पष्टतः मत दिया है कि प्रथम एक ही आभु था जिससे सारा संसार निर्मित हुआ। ऋषियों ने दिव्य दृष्टि से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया और वेदों के रूप में ग्रथित किया। ऋषि को लेश मात्र भी अहं नहीं है यह इस मन्त्र से ज्ञात होता है –

को अद्धा वेद कः इह प्रवोचत्
कुतः आजाता कुतः इयं विसृष्टिः।
अर्वाक् देवाः अस्य विसर्जनेन
अथ कः वेद यत आबभूव ॥[6]

निश्चित रूप से कौन जानता है और कौन यहाँ प्रवचन दे सकता है कि यह विशेष सृष्टि कहाँ से आयी और कब निर्मित हुई। देवता भी इस सृष्टि के पश्चात् हुए अतः कौन जान सकेगा कि यह किससे उत्पन्न हुई। जिससे यह सृष्टि उत्पन्न हुई वही उसे धारण करता है।[7] यह वैज्ञानिक सत्य है। कारण यह है कि धरती सूर्य से उत्पन्न हुई है और सूर्य ही पृथिवी को धारण कर रहा है। सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में पृथिवी तथा अन्य ग्रह स्थित हैं। सूर्य अपनी ग्रहमाला के साथ आकाशगंगा में स्थित है। आकाशगंगा से उत्पन्न हुई सूर्यमाला को आकाशगंगा ही धारण कर रही है। विज्ञान को ज्ञात है कि सूर्यमाला आकाशगंगा के केन्द्र को घेरे डाल रही है। हमारे वैदिक ऋषियों को भी यह ज्ञात था। इस कारण ऋषियों ने आकाशगंगा के केन्द्र पर

स्थित तारे का नाम मूलबर्हि रखा है। वहाँ पर आकाश गंगा का मूल है। इस मूल से शाखा-उपशाखाएँ फैली हुई हैं और इस कारण एक बर्हि स्त्रड्डुठ बन गया है। यह सब सोच समझ कर मूलबर्हि नाम दिया है।

आकाशगंगा का आधार क्या है इसके विषय में विज्ञान का उत्तर सर्वसम्मत नहीं है परन्तु वैदिक ऋषिगण इस तथ्य से परिचित थे। ऋषि कहते हैं कि जिससे आकाशगंगाएँ बनी हैं वही परम आकाश में रहने वाला परम अध्यक्ष सब आकाशगंगाओं को धारण कर रहा है। जो परम अध्यक्ष आकाशगंगाएँ और अन्य सब सृष्टि को बनाने वाला है वही निश्चित जानता है कि यह सृष्टि कब और कहाँ से पैदा हुई। यह बता कर ऋषि ने फिर एक शंका खड़ी कर दी है कि वह भी सब जानता है या नहीं? इस प्रश्न से ऋषि बता रहे हैं कि जिसे परम अध्यक्ष मानते हैं वह सचमुच परमश्रेष्ठ निर्माता है या उसके भी ऊपर भी कोई व्यापक शक्ति है। यह प्रश्न अनुत्तरीय ही है।

विज्ञान नित्य नूतन अन्वेषण कर रहा है। यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य भौतिक उन्नति (विज्ञान) एवं आध्यात्मिक उन्नति, दोनों को साथ-साथ करे।[10] इस मन्त्र पर यदि विशेष ध्यान दिया जाए तो यह कहना अनुचित नही होगा कि जहाँ पानी की लहरों को चीर कर हमारे जहाज़ सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण करते है और आकाश में हम उड़ते फिरते है वही पृथ्वी पर संभलकर चलना हमने आज तक नही सीखा। स्वयं को अत्याधुनिक समझने वाली पीढ़ीं वेदों को तो हेय मानती है और पाश्चात्य शिक्षा का अंधानुकरण करती है। यही कारण है कि विज्ञान एवं आध्यात्म दोनों ही रूप से उनकी अवनति देखी जाती है।

सृष्टि रचना का उपदेश करते हुए यजुर्वेद के निम्नलिखित मंत्र में कहा कि परमात्मा से चारों वेद उत्पन्न हुए है -

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥[11]

अर्थात् यह जगत् सूर्य-चन्द्र, पशु-पक्षी एवं नर-नारी उत्पन्न करने के पश्चात् उस परमात्मा से ऋवेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद उत्पन्न हुए। यह सत्य है कि परमेश्वर ही पूर्ण पुरुष है और उससे ही यह जगत् एवं मानव कल्याणार्थ चारों वेदों के रूप में पूर्ण विद्या निकली है। वेदों के अनेक मंत्रों में सृष्टि रचना का वर्णन है। यजुर्वेद का सम्पूर्ण अध्याय 31, सामवेद के मंत्र 617 से 627 ऋवेद मंत्र 10/90/1-13 तथा अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 6 में मूल प्रकृति के रज, तम एवं सत्व, इन तीन गुणों से सम्पूर्ण जड़ जगत की रचना का वर्णन मिलता है।

वस्तुतः आज के विज्ञान को जो भी तथ्य ज्ञात हैं वे वेदों में पूर्व से ही निहित है। आवश्यकता है कि आधुनिक विज्ञान वेद को भली भाँति समझकर उसके आधार पर नूतन अन्वेषण करे। वेद और विज्ञान, दोनों ही सृष्टि की उत्पत्ति के बारे

में अलग-अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। वेदों में, सृष्टि की रचना ईश्वर द्वारा मानी जाती है, जबकि विज्ञान बिग बैंग सिद्धांत और विकासवादी सिद्धांतों पर आधारित है। यह सभी को समझना होगा कि वेद और विज्ञान दोनों के अपने-अपने तर्क और प्रमाण हैं, लेकिन वे एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं, अपितु पूरक हो सकते हैं। यदि वेदों के प्रति पूर्वाग्रह छोड़कर स्वस्थ मनसा चिन्तन किया जाए तो अवश्य ही वैज्ञानिक प्रगति अबाध गति से तो होगी ही साथ ही उन समस्त प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे जिनका समाधान आज भी खोजा जा रहा है।

---

१. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो विऽओम परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीत् गहनं गभीरम्।। ऋग्वेद, नासदीय सूक्त १०.१२९
२. न मृत्युः आसीत् अमृतम् न न हि न रात्र्याः अन्तः आसीत् प्रकेतः।
आनीत अवातम् स्वधया तत् एकम् तस्मात् ह अन्यत् न परः किंचन आस।। वही, १०.१२९
३. तम आसीत् तमसा गूढहं अग्रे अप्रकेतं सलिलं सर्वम् आ इदम्।
तुच्छेन आभु अपिहितं यत् आसीत् तपसः तत् महिम्ना अजायत एकम्।। वही, १०.१२९
४. The Contraction Hypothesis of Hermann Von Helmholtz - A famous German Physicist.
५. कामस्तदग्रे समवर्तत अधि मनसः रेतः प्रथमं यत् आसीत्।
सतः बन्धुम् असति निः अविन्दन ह्यादि प्रतिऽइष्य कवयः मनीक्षा।। वही, १०.१२९
६. यजुर्वेद २३.५४
७. ऋग्वेद नासदीय सूक्त १०.१२९.५
८. ऋग्वेद नासदीय सूक्त १०.१२९.६
९. इयं विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यः अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् सः अंगः वेद यदि वा न वेद।। वही, १०.१२९
१०. यजुर्वेद मंत्र ४०/४१
११. ऋग्वेद मंत्र १०/९०/९

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

१. ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित वैदिक शोधन मंडल, तिलक विद्यापीठ, पुणे। यजुर्वेद वैदिक शोधन मंडल, तिलक विद्यापीठ, पुणे।
२. सामवेद, वैदिक शोधन मंडल, तिलक विद्यापीठ, पुणे।

३. अथर्ववेद, वैदिक शोधन मंडल, तिलक विद्यापीठ, पुणे।
४. ऋग्वेद और भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस
५. ऋक्सूक्त संग्रह, हरिदत्त शास्त्री, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।
६. ऐतरेयोपनिषद्, सानुवाद शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस गोरखपुर
७. भारतीय दर्शन, हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, २०१८
८. The Birth and Death of Sun by George Gamow, published by the Viking Press in 1940
९. A Brief History of Time by Stephen Hawking by Transworld Publishers Ltd.
१०. A Short History of Nearly Everything by Bill Bryson by Doubleday (UK) Broadway Books (US)

- सहायक आचार्य (संस्कृत),
डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कर्णप्रयाग (चमोली) उत्तराखण्ड

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योतिं वर्षः ७४, सं. ६
सितम्बर ,२०२५

भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकार-स्वरूप व संख्या

- राजकुमारी

काव्यसौन्दर्य की परख करने वाले शास्त्र का नाम काव्यशास्त्र' है।[१] भारतीय काव्यशास्त्र का प्रारम्भ कब हुआ? यह अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु, अन्य शास्त्रों की भाँति काव्य का भी मूलाधार वेद ही है। साहित्य के चारुत्वाधान की सभी सामग्रियों का प्रयोग वेद की ऋचाओं मे ही उपलब्ध हो जाता है। परन्तु वेदांगों में साहित्य का नाम नहीं आता। इसीलिए वेद और वेदांगों से साहित्यशास्त्र का साक्षात सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वेद को 'देव का अमर काव्य कहा गया है- 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' अर्थात् वेद स्वयं काव्य रूप हैं और उनमें काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है। फलतः वेद काव्यशास्त्र का लक्ष्य ही हैं इसलिए काव्यसौन्दर्य के निरूपक साहित्यशास्त्र में सौन्दर्य के आधायक जिन गुण, रीति, अलंकार, ध्वनि आदि तत्त्वों का विवेचन किया गया है वे सभी तत्त्व, मूलरूप में वेद में पाये जाते हैं। आचार्य दण्डी के शब्दों में-

काव्यशोभाकरान् धर्मान् अंलकारान् प्रचक्षते।[२]

भारतीय साहित्यशास्त्र में 'रस-सिद्धान्त' के साथ अलंकार सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य भामह इस सिद्धान्त के प्रथम प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त दण्डी, उद्भट, रुद्रट, जयदेव आदि इस सिद्धान्त के अन्य उल्लेखनीय आचार्य हैं। इन आचार्यों ने अलंकार को ही काव्य का सर्वस्व स्वीकार किया है। इनका मत है कि जिस प्रकार उष्णता अग्नि का प्राण है उसी प्रकार अलंकार काव्य का जीवनाधार है। यदि उष्णता के अभाव में अग्नि,अग्नि नहीं समझी जा सकती, तो अलंकार-विहीन काव्य को काव्य भी कैसे कहा जा सकता है?[३]

अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति

'अलम्' पूर्वक 'कृ' धातु के प्रयोग से 'अलंक्रियते अनेन' अथवा 'अलङ्करोति' व्युत्पत्ति करने पर करण या भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय करने पर ''अलङ्कार' पद निष्पन्न होता हे। इस पद का अर्थ है-जिस पदार्थ या तत्व के द्वारा कोई सुशोभित किया जावे, वह तत्त्व अलंकार कहलाता है। जिस प्रकार भौतिक शरीर को कुण्डल आदि अलंकार अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार शब्द-अर्थ रूप शरीर वाले काव्य को अलंकृत करने वाले उपमा आदि अलंकार कहलाते हैं।

आचार्यों की अलंकार सम्बन्धी परिभाषाएँ

भामह का कथन है कि अलंकार काव्य का प्रमुख सौन्दर्य तत्त्व है। जिस प्रकार कामिनी का मुख सुन्दर होते हुए भी भूषण के बिना और अधिक शोभायमान नहीं होता, उसी प्रकार अलंकारों के बिना काव्य की शोभा नहीं होती।[५]

भामह ने शब्द और अर्थ की वक्रता से युक्त उक्ति को अलंकार बताया था[६] और वक्रोक्ति के अभाव में अलंकार का अभाव प्रतिपादित किया था।[७]

आचार्य दण्डी ने काव्य के सभी शोभाकारक धर्मों को अलंकार कहा, जिनके अनन्त प्रकार हो सकते हैं।[८] अग्निपुराणकार ने अलंकार के लक्षण में दण्डी का अनुसरण किया है।[९] उसमें अर्थालंकार से रहित कविता को विधवा के समान बताया गया है।[१०]

वामन ने रीति को काव्य की आत्मा प्रतिपादित करतु हुए काव्य की उपादेयता सौन्दर्य रूपी अलंकार के कारण ही स्वीकार की।[११] उनके अनुसार काव्यात्मक सौन्दर्य ही अलंकार है। यद्यपि काव्य की शोभा गुणों के द्वारा होती है[१२] तथापि उस शोभा का अतिशय, अलंकार बढ़ाते हैं।[१३]

उद्भट ने भी काव्य में अलंकारों की प्रधानता का प्रतिपादन किया। रस, भाव, रसाभास भावाभास, तथा भावशान्ति को उन्होंने रसवत्, प्रेयस, ऊर्जस्वी और समाहित अलंकारो में समाविष्ट कर लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने आक्षेप, समासोक्ति, पर्यायोक्त आदि अलंकारों के[१४] व्यंग्य अर्थ को वाच्यार्थ का उपकारक प्रतिपादित करते हुए उत्तरवर्ती ध्वनिसिद्धान्तियों के रस, वस्तु व अलंकार व्यंग्यों को अलंकार रूप ही मान लिया।

रुद्रट ने भी काव्य में अलंकारों का प्राधान्य स्वीकार किया।[१५] वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रवर्त्तक आचार्य कुन्तक ने भी अलंकार को प्रधानता दी। काव्य की परिभाषा करते हुए उन्होंने अलंकार सहित उक्ति को ही काव्य माना।[१६] उनका कथन था कि जो कथन अलंकृत होता है, उनमें ही काव्यत्व होता है, न कि काव्य का अलंकार से योग होता है।[१७]

भोजराज ने काव्य के शोभाकारकतत्त्व को अलंकार का सामान्य लक्षण मान कर उस शोभा के अभाव में अलंकार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। भोज के अनुसार उक्ति या काव्य के तीन वर्ग हैं–वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति और रसोक्ति। उपमा आदि अलंकारो की प्रधानता होने पर वक्रोक्ति होती है। गुणों की प्रधानता होने पर स्वभावोक्ति होती है और रस की प्रधानता होने पर रसोक्ति होती है।[१८]

अलंकारों के प्राधान्य पर प्रथम और प्रबल प्रहार ध्वनिसिद्धान्ती आनन्दवर्धन ने किया था। उन्होंने कहा कि काव्य में अलंकार का नियोजन रस आदि के अंगरूप में होना चाहिए, अंगी रूप में नहीं।[१९] जिस प्रकार कामिनी के शरीर को कुण्डलादि अलंकार शोभित करते हैं उसी प्रकार

काव्यगत अलंकार काव्य के शरीर शब्द-अर्थ को शोभित करते हैं।[२०] इन अलंकारों का विनिवेश रस की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए, न कि उसके लिए पृथक् यत्न किया जाए[२१]

मम्मट[२२], राजशेखर[२३], हेमचन्द्र[२४], विश्वनाथ[२५], विश्वेश्वर आदि आचायों के अलंकारों के लक्षण इसी दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं।

स्पष्ट है कि भरत के पश्चात् तथा आनन्दवर्धन से पूर्व साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने अलंकार को काव्य में अंगी के रूप में प्रतिष्ठित किया था। परन्तु ध्वनिसिद्धान्ती आचार्यों ने उनको काव्य-शोभा का आधायक तत्त्व मान कर गौण स्थान दिया। उनका अभिमत रहा कि अलंकारों की रचना रस की अपेक्षा से होनी चाहिए। तदनन्तर काव्यों समालोचना की पद्धति में प्राय: इसी सिद्धान्त को मान्यता दी जाती रही।

अलंकारो की संख्या-अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन यद्यपि भरत के नाट्यशास्त्र में है और उसमें चार अलंकार-उपमा, रूपक, दीपक और यमक बताए गए हैं, तथापि अलंकारो का विस्तृत और वैज्ञानिक रूप से विवेचन भरत से भी कई शताब्दियों बाद भामह ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रन्थ में किया। उन्होंने ३८ अलंकारों की स्वरूप विवेचना की। भामह के बाद दण्डी ने ३७ अलंकारो के स्वरूप का वर्णन किया था।

दण्डी के बाद के आचार्यों ने अलंकारों की संख्या में और भी वृद्धि की। इनमें उद्भट, वामन, रुद्रट, भोज, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित और जगन्नाथ मुख्य हैं। इन्होंन नये अलंकारो की मौलिक रूप से उद्भावना तथा विवेचना भी की। कुछ अलंकारों के अनेक भेद-प्रभेद भी कल्पित किए गए। अलंकारों की सबसे अधिक संख्या अप्पयदीक्षित ने कुवलयानन्द में दी, इसमें इन्होंने १२३ अर्थालंकारों का विवेचन किया। प्रमुख आचार्यों द्वारा प्रस्तुत अलंकारों की संख्या निम्नांकित सारणी से स्पष्ट है-

सारणी

आचार्य	शब्दालंकार	अर्थालंकार	मिश्रालंकार	उभयालंकार	कुल योग
१. भामह	२	३६	–	–	३८
२. दण्डी	२	३५	–	–	३७
३. उद्भट	४	३७	–	–	४१
४. वामन	२	२९	–	–	३१
५. रुद्रट	५	५७	–	–	६२
६. भोज	२४	२४	–	२४	७२
७. मम्मट	६	६२	–	–	६८

८. रुय्यक	६	६८	४	–	७८
९. विश्वनाथ	७	७५	–	–	८२
१० अप्पयदीक्षित	–	१२३	–	–	१२३
११. जगन्नाथ	–	७०	–	–	७०

साहित्यशास्त्र में अलंकार-वर्गीकरण

आचार्य भरत के चार अंलकारों से २७ की संख्या हो गई।
लक्षण, गुण आदि काव्य तत्त्वों के योग से नवीन-नवीन अलंकार प्रकाश में आए उक्तियों में थोड़े-थोड़े भेद के आधार पर समान अलंकारों से अनेक स्वतंत्र अलंकारों की कल्पना की गई। एक अलंकार के सादृश्य या विपर्ययात्मक रूप के आधार पर दूसरे अलंकार को उद्भावित किया गया। श्रृंखला आदि नवीन तत्त्वों के आधार पर भी अनेक अलंकारों की कल्पना की गई। इसलिए काव्य के अलंकारों का विभिन्न वर्गों में विभाजन होने लगा।

कुछ साहित्यशास्त्रियों ने अलंकारो का व्यवस्थित रूप से वर्गीकरण किया है व उसके लिए कुछ निश्चित सिद्धान्त स्वीकार किए हैं।

अधिकांश आचार्यों ने प्रधानतया अलंकारों को शब्द व अर्थ दो भेदों में बांटा हैं। भरतमुनि ने चार (उपमा, दीपक, रूपक व यमक) अलंकार का उल्लेख किया है। उनमें यमक शब्दालंकार है व शेष तीन अर्थालंकार हैं। भामह ने भी अनुप्रास और लाटानुप्रास को शब्दालंकारों की श्रेणी में रखा[२९] और अर्थालंकारों की संख्या में वृद्धि की।

यद्यपि इन्होंने अलंकारों के विभाग का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया है, किन्तु भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' कह कर काव्य की परिभाषा की है। अलंकार की कल्पना भी इन्हीं दो शब्द और अर्थ में सीमित की जा सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि भामह अलंकारो को शब्द व अर्थ दो भागों में विभाजित करना उचित समझते थे।[३०] पर उन्होंने विभाग के इस आधार का संकेत नहीं किया है।

आचार्य दण्डी ने भी गुण, दोष तथा अलंकार तीनों के शब्दगत तथा अर्थगत होने का निर्देश किया है। दण्डी ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श में काव्य शरीरभूत शब्द और अर्थ, उनके (शब्दगत और अर्थगत) अलंकार, सुकर व दुष्कर चित्र काव्य प्रकार और काव्य के गुण और दोष संक्षेप में निरूपित कर दिए हैं।[३१]

आचार्य वामन ने सर्वप्रथम गुणों का शब्दगत और अर्थगत रूप से द्विविध विभाजन किया है और अलंकारों को भी दो भागों में विभाजि किया है।[३२]

भोजराज ने अलंकारों को स्पष्टतः तीन वर्गों में विभाजित किया है।[३३]
१. शब्दालंकार, २. अर्थालंकार, ३. उभयालंकार

यह वर्गीकरण अलंकार में रहने वाले चारुत्व के आधार पर किया गया है। यह चारुत्व कभी केवल शब्द में, कभी केवल अर्थ में और कभी समान रूप से शब्द व अर्थ दोनों में रहता है।

मम्मट ने भी अलंकारों की त्रिविधा को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया हे।[34] और इस प्रकार शब्दगत, अर्थगत और उभयगत ये तीन प्रकार के अलंकार प्रतिपादित किए हैं। मम्मट ने इस विभाजन का आधार अन्वयव्यतिरेक को बताते हुए लिखा है कि जो अलंकार जिस आधार (शब्द, अर्थ या शब्दार्थयुगल) के साथ अन्वय और व्यतिरेक सम्बन्ध का अनुसरण करता हे, वह उसका ही अलंकार है।३५

आचार्य विश्वनाथ को भी अलंकारों का त्रिविध विभाग अभीष्ट प्रतीत होता है, इसलिए पुनरुक्तवदाभास को उन्होंने उभयालंकार माना।[36]

अप्पयदीक्षित व जगन्नाथ ने शब्दालंकार व उभयालंकार का निरुपण नहीं किया है[37] तथापि चित्रकाव्य के विविध या चतुर्विध विभाग[38] से प्रतीत होता है कि उन्हें भी यह वर्गीकरण अभीष्ट है।

१. शब्दालंकार-यह शब्द पर आश्रित रहता है। फलत: यह आश्रयभूत शब्द का पर्याय परिवर्तन सहन नहीं कर सकता। अत: अन्वय व्यतिरेक से यह सिद्ध होता है कि किसी शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रख देने पर यदि अलंकारत्व नष्ट हो जाता हे तो वह शब्दालंकार होगा। पर्यायवाची शब्द के परिवर्तन किए जाने पर भी यदि अलंकारतत्व नष्ट नहीं होगा तो उसे शब्दालंकार नहीं माना जा सकता।

२. अर्थालंकार-यह शब्द के अर्थ पर आश्रित रहता है अत: शब्द की जगह उसी अर्थ के वाचक दूसरे शब्द को रख देने पर भी अलंकारत्व की हानि नहीं होती। कारण यह है कि शब्द के पर्याय परिवर्तन किए जाने पर भी अर्थ तो वही रह जाता है। अत: अर्थ में परिवर्तन नहीं होने के कारण अर्थाश्रित अलंकार की उस शब्द परिवर्तन से हानि नहीं होती। इसलिए पर्यायपरिवर्तनासहत्व शब्दालंकार का तथा पर्यायपरिवृत्ति सहत्व अर्थालंकार का व्यावर्त्तक लक्षण है।

३. उभयालंकार-उभयालंकार अर्थात् कभी-कभी अलंकार एक साथ शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित रह कर दोनों को अलंकृत करते हैं।

रुद्रट कृत अलंकार वर्गीकरण काव्यालंकारों को तत्तदलंकार तत्त्वों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रथम प्रयास रुद्रट ने किया। उनके पूर्व अलंकारों के विधायक व व्यावर्त्तक वक्रोक्ति सादृश्य आदि का निर्देश अवश्य मिलता है। पर उन मूल तत्त्वों के आधार पर अलंकार के वर्गों की कल्पना नहीं की गई थी। आचार्य रुद्रट ने अपने ग्रन्थ काव्यालंकार में विवेचित अलंकारो को आश्रय आदि के आधार पर शब्दालंकार और अर्थालंकार वर्गों में विभाजित कर अर्थालंकारों को मूल तत्त्वों के आधार पर निम्नलिखित चार

वर्गों में विभक्त कर उपस्थापित किया है।[३९]
१. वास्तव वर्ग[४०], २. औपम्य वर्ग[४१], ३. अतिशय वर्ग[४२], ४. श्लेष वर्ग४३

रूय्यक कृत वर्गीकरण-आचार्य रूय्यक का भी अलंकार वर्गीकरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने अलंकारों को प्रथमतः शुद्ध तथा मिश्र इन दो भागों में बांटा है। शुद्धालंकारों को जिन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है, वे हैं- सादृश्याश्रय, विरोधमूल, श्रृंखलाबन्ध, तर्कन्यायमूल, गूढ़ार्थ प्रतीतिपर तथा चित्तवृत्ति पर आश्रित[४४] इन प्रमुख वर्गों को उन्होंने विभिन्न उपवर्गों में भी विभाजित किया है। रूय्यक के कुछ अलंकारों का वर्गीकरण पौनरुक्त्य के आधार पर किया है।

पौनरुक्त्य वर्ग के अलंकार

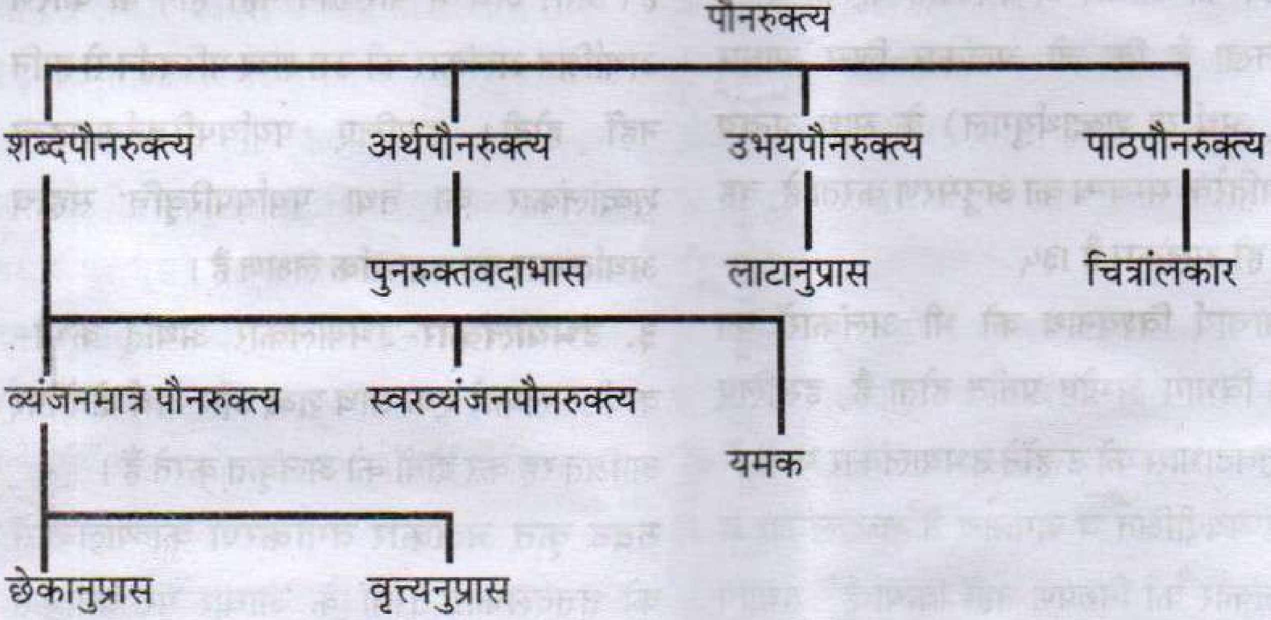

१. सादृश्यगर्भ- अलंकारों के वर्गीकरण का प्रथम आधार सादृश्य है। इस वर्ग में सबसे अधिक अलंकार आते हैं। सादृश्य तीन प्रकार का होता है[४५]-१. भेदाभेद प्रधान, २.अभेद प्रधान, ३. भेद प्रधान।

२. विरोध गर्भ[४६]- इस वर्ग में उन अलंकारों की गणना की गई है, जिनके मूल में विरोध की भावना निहित रहती है। वे अलंकार हैं-विरोध, विभावना, असंगति, विषम, विचित्र आदि।

३. श्रृंखला मूलक[४७]-श्रृंखलाबन्ध का अर्थ है सांकल की भांति एक के बाद दूसरी वस्तु का क्रम से ग्रथन।[४८] इस वर्ग में रखे गए अलंकार पद या वाक्य, अन्य पद या वाक्य के साथ श्रृंखला के रूप में सम्बद्ध रहते हैं। यथा, कारणमाला, एकावली, मालादीपक और सार-इन अलंकारों में कारण, विशेषण आदि की श्रृंखलाबद्ध स्थिति

रहती है।

४. न्यायमूलक-शास्त्रीय तथा लौकिक न्याय से सम्बद्ध अलंकारों को तीन वर्गों में रखा गया है- १. तर्कन्याय मूलक[४९], २. वाक्यन्याय मूलक या काव्यन्यायमूलक[५०], ३. लोकन्याय मूलक-लोक व्यवहार में प्रचलित प्रयोग या लोक प्रसिद्ध न्यायों पर आधारित अलंकार इसमें रखे गये हैं।

५. गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक[५१]- इस वर्ग में इन अलंकरों को रखा गया है जिनमें गूढ़ अर्थ की प्रतीति हुआ करती है। गूढ़ार्थ बोध में ही उन अलंकारों का सौन्दर्य निहित रहता है। वे अलंकार हैं-१. सूक्ष्म, २. व्याजोक्ति, ३. वक्रोक्ति।

इस प्रकार रुय्यक ने अपने ६४ अलंकारों का तो वर्गीकरण कर दिया किन्तु उनके अनेक अलंकारों अवर्गीकृत भी रह गए हैं, यथा-स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, संसृष्टि, संकर, रसवत, प्रेय, उर्जस्वी तथा समाहित।

विद्या नाथकृत वर्गीकरण-विद्यानाथ ने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' में पहले आश्रय भेद[५२] के अधार पर अलंकार के तीन वर्ग स्वीकार किए हैं। शब्दगत, अर्थगत तथा उभयगत[५३] अनुप्रास आदि को शब्दालंकार, उपमा आदि को अर्थालंकार तथा लाटानुप्रास, उभय संसृष्टि आदि को उभयगत अलंकार माना है। अर्थालंकार के मुख्य चार विभाग कर पुनः अलंकार-कक्ष्याविभाग में विद्यानाथ ने आचार्य रुय्यक के मत का अनुसरण किया। उनके चार प्रमुख अलंकार वर्ग निम्न हैं[५४] १. प्रतीयमान वास्तव वर्ग, २. प्रतीयमानौपम्य वर्ग, ३. प्रतीयमान रसभावादि वर्ग, ४. अस्फुट प्रतीयमान वर्ग।

विद्यानाथ ने उपरिलिखित अलंकार वर्गों के अतिरिक्त अलंकार के अवान्तर विभाग भी किए, जो अधिकांशतः आचार्य रुय्यक के वर्गीकरण के सिद्धान्त पर आधृत हैं। विद्यानाथ के शब्दों में निम्नलिखित हैं-१. साधर्म्यमूलक (i) भेद प्रधान (ii) अभेद प्रधान (iii) भेदाभेद प्रधान[५५], २. विरोधमूलक[५६], ३. वाक्यन्यायमूलक[५७], ४. लोकव्यवहारमूलक[५८], ५. तर्कन्यायमूलक[५९], ६. श्रृंखलावैचित्र्यमूलक[६०], ७. अपह्नवमूलक[६१], ८. विशेषणवैचित्र्यमूलक[६२]।

निष्कर्ष यह है कि रुद्रट, रुय्यक, विद्यानाथ व विद्याधर के द्वारा किये गये अलंकार वर्गीकरण में से किसी भी आचार्य का वर्गीकरण सर्वथा पूर्ण नहीं कहा जा सकता। रुय्यक के वर्गों को स्वीकार करने वाले विद्याधर तथा विद्यानाथ ने भी स्वेच्छा से काव्यालंकारों को वर्ग विशेष में विभक्त किया है। रुय्यक ने किसी अलंकार विशेष को यदि एक वर्ग में रखा तो अन्य आचार्यों ने उसी अलंकार को किसी दूसरे वर्ग में वर्गीकृत किया है। विशेष वर्ग में अलंकार विशेष को वर्गीकृत करने में मतैक्य का अभाव वर्गीकृत के आधार के तर्कसंगत न होने का सूचक है, फिर भी संस्कृत के उक्त आचार्यों ने जितने अलंकार वर्गों की कल्पना की

है, उन्हें मिला कर वर्गीकरण का व्यापक आधार बनाया जा सकता है। रुय्यक के अलंकार वर्गों के साथ रुद्रट के वास्तव तथा श्लेष आदि वर्गों को मिला कर संस्कृत अलंकार शास्त्र के सभी स्वीकार्य अलंकारों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

---

१. सह आचार्य संस्कृत, महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)।
२. काव्यालङ्कारसूत्र, १-२
३. काव्यादर्श २-१
४. चन्द्रालोक:१/८, अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती। असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती।
५. भामहालंकार: १/१३, न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।
६. (i) भामहालंकार १/३६, वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृति:।
(ii) वही ५/६६, वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलंकाराय कल्पते।
७. वही २/८५, सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽ-लंकारोऽनया बिना।।
८. काव्यादर्श: २/१, काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते। ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन कार्त्स्ने वक्ष्यति।
९. अग्निपुराण: ४२/१७, काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्-कारान् प्रचक्षते।
१० वही ३४३/१२, अर्थालंकारहिता विधवेव सरस्वती।
११. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति: १/१/२, काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकार:।
१२. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति: ३/१/१, काव्यशोभाया: कत्तारो धर्मा: गुणा:।
१३. वही ३/१/२, तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:।
१४. काव्यालंकारसारसंग्रह: ४/६, पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते। वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मा।
१५. रुद्रटालंकार: १/२, काव्यालंकारोऽयं ग्रन्थ: क्रियते यथायुक्ति:।
१६. वक्रोक्तिजीवितम्१/६, अलंकृतिरलंकार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते। तदुपायतया तत्त्व सालंकारस्य काव्यता।
१७. वक्रोक्तिजीवितम् १/६ की वृत्ति।
१८. श्रृंगारप्रकाश: पृ. ११, त्रिविधं खत्वलंकार-वर्ग:-वक्रोक्ति:, स्वभावोक्ति:, रसोक्तिरिति। तत्रोपमाद्यलङ्-कारप्राधान्ये वक्रोक्ति:, सोऽपि गुणप्राधान्ये स्वभावोक्ति:, विभावानुभाव-व्यभिचारिसंयोगात्तु रसोक्तिरिति।
१९. ध्वन्यालोक: २/१९, विवक्षातत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन।
२०. वही २/७।
२१. वही २/१७।
२२. काव्यप्रकाश: ८/६७, उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् हारादिवदलङ्कारास्ते-ऽनुप्रासोपमादय:।
२३. काव्यमीमांसा पृ.१४, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलं-कुर्वन्ति।
२४. काव्यानुशासनम् पृ. १७, अंकाश्रिता: अलंकार।
२५. साहित्यदर्पण: १०/१, शब्दार्थयोरस्थिरा धर्मा: शोभातिशायिन: रसादीनुपकुर्वन्तीऽलङ्कारास्तेऽङ्गना-दिवत।
२६. रसगंगाधर: पृ. २४८, काव्यात्मनों व्यंग्यस्य रमणीयता प्रयोजका अलंकारा:।
२७. नाट्शास्त्र १६/४०, उपमा दीपकं चैव यमकं तथा काव्यस्यैते ह्यलङ्काराश्चत्वार: परि-किर्तिता:।
२८. प्रमुख आचार्यों द्वारा मानी गई अलंकार संख्या को निम्न प्रकार देखा जा सकता है-
उपमा रूपकं चैव दीपको यमकस्तथा।

चत्वार एवालङ्कारा भरतेन निरूपिता:।।
वामनेन त्रयस्त्रिंशद् भेदास्तस्य निरूपिता:।
पञ्चत्रिंशद्विधश्चायं भामहेन प्रकीर्तित:।।
नवत्रिंशद्विधश्चैव उद्भटेन प्रदर्शित:।।
द्विपञ्चाशद्विध: प्रोक्तो रुद्रटेन तत: परम्।
सप्तषष्टिविध: प्रोक्ता: प्रकाशे मम्मटेन च।।
शतधा जयदेवेन विभक्तो दीक्षितेन च।
चतुर्विंशतिभेदास्तु कृता सकशतात्तरा: काव्यप्रकाश: पृ. ४४०।

२९. भामहालंकार: २/४, अनुप्रास: यमको रूपकं दीपकोपमे। इति वाचामलंकारा: पञ्चैवा-ऽन्यैरुदाहृता:।

३०. भामहलंकार: १/१/१४, शब्दाभिधेयालंकार -भेदाद् इष्टं द्वयं तु न:।

३१. काव्यादर्श: ३/१८६, शब्दार्थालंक्रिया: चित्रमार्गा: सुकरदुष्करा: गुणदोषा वाक्यानामिति संक्षिप्य दर्शिता:।

३२. १. काव्यांलकारसूत्रवृत्ति: पृ. ३७,४/१, तंत्र शब्दालंकारौ द्वौ यमकानुप्रासौ क्रमेण दर्शयितुमाह।
२. वही पृ.४२.४/२, सम्प्रत्यर्थालंकाराणां प्रस्ताव:।

३३. सरस्वतीकण्ठाभरण: २/१, शब्दार्थोभया-संज्ञाभिरलंकारान्कवीश्वरा: बाह्यानाभ्यन्तरान्व-बाह्याभ्यन्तरांश्चानुशासति।

३४. काव्यप्रकाश: पृ.५६५, प्रतिपादिता: शब्दार्थोभयगतत्वेन त्रैविध्यजुषोऽलङ्कारा:।

३५. का. प्र. पृ. ५६५, कुत: पुनरेष नियमो यदेतेषां तुल्येऽपि काव्यशोभातिशयहेतुत्वे कश्चिदलङ्कार: शब्दस्य कश्चिदर्थस्य, कश्चित्वोभयस्येति चेत् उक्तमत्र यथा काव्ये दोषगुणालङ्काराणां शब्दार्थोभयगतत्वेन व्यवस्थायाम् अन्वयव्यतिरेकावेव प्रभवत: निमित्तान्तरस्याभावात्। ततश्च योऽलङ् कारो यदीयान्वयव्यतिरेकावनुविधते स तदलङ्कारों व्यवस्थाप्यते इति।

३६. साहित्यदर्पण: पृ. २७४, शब्दपरिवृत्ति सहत्वासहत्वाभ्यामस्योभयालङ्कारत्वम्। शब्दार्थयो: प्रथमं शब्दस्य बुद्धिविषय त्वाच्छब्दालंकारेषु वक्तव्येषु शब्दार्थालंकार-स्यापि पुनरुक्तवदाभासस्य चिंरतनै: शब्दा-लंकारमध्ये लक्षित्वात्प्रथमं तमेवाह।

३७. चित्रमीमांसा पृ. ५, शब्दचित्रस्य प्रायो नीरसत्वात्रात्यन्तं तदाद्रियन्ते कवय: न वा तत्र विचारणीयमतीवोपलभ्यत इति शब्दचित्रांशम-पहायार्थचित्रमीमांसा प्रसन्नविस्तीर्णा प्रस्तूयते।

३८. १ चित्रमीमांसा पृ.५, यदव्यंग्यमपि चारु तच्चित्रम्।
२. वही पृ.५, तत् त्रिविधं शब्दचित्रमर्थचित्र-मुभयचित्रमिति।
३. रसगंगाधर: पृ. १९, यत्रार्थमत्कृत्यपुरस्कृता शब्दचमत्कृति: प्रधानं तदधर्म चतुर्थम्।

३९. रुद्रटालंकार:७/९, अर्थस्यालंकारा वास्तव-मौपम्यमतिशय: श्लेष: एषामेंव विशेषा अन्ये तु भवन्ति नि:शेषा:।

४० वही ७/१०, वास्तवमिति तज्ज्ञेयं क्रियते वस्तुस्वरूपकथनं यत् पुष्टार्थमविपरीत निरुपम-मनतिशयश्लेषम्।।

४१. वही ८/१, सम्यक् प्रतिपादयितु स्वरूपतो वस्तु तत्समानमिति। वस्त्वन्तरमभिदध्याद्द-वक्ता यस्मिंस्तदौपम्यम्।

४२. रुद्रटांलकार: ९/१, यत्रार्थधर्मनियम: प्रसिद्धिबाधाद्विपर्ययं याति कश्चित्कचिद-तिलोकं

स्यादित्यतिशयस्तस्य।

४३. वही १०/१, यत्रैकमनेकार्थैर्वाक्यम् रचितं पदैरनेकस्मिन् अथ कुरुते निश्चयमर्थश्लेषः स विज्ञेयः।

४४. अलंकार मीमांसा: डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, पृ. १८३।

४५. अलंकारसर्वस्वम् पृ. ३१, साधमर्क्ये त्रयः प्रकाराः भेदप्राधान्यं व्यतिरेकादिवत् अभेद-प्राधान्यं रूपकादिवत् द्वयोस्तुल्यत्वं यथास्याम् (उपमायाम्)

४६. अलंकारसर्वस्म् पृ. १४५, अधुना विरोधगर्भोऽलंकारवर्गः प्रक्रियते।

४७. वही, पृ. १७६, एवं विरोधमूलानलंकारा-न्निर्णीय श्रृंखलाबन्धोपचिता अलंकारालभ्यन्ते।

४८. समुद्रबन्ध व्याख्या पृ. १५७, श्रृंखलाबन्धो नाम श्रृंखलावदरोत्ति रग्रथितत्वेन निबन्धः

४९. अलंकारसर्वस्वम् पृ. १८३, अधुना तर्कन्यायाश्रयेणालंकार द्वयमुच्यते।

५०. अलंकारसर्वस्वम् पृ. १८७, अधुना वाक्यन्यायमूला अलंकारा उच्यन्ते। वाक्यन्यायो मीमांसान्यायः

५१. वही, पृ. २१७, इतिः प्रभृति गूढार्थ प्रतीति-परालंकारलक्षणम्।

४२. प्रतापरुद्रायः पृ. २४५, आश्रयाश्रयिभावेना-लङ्कार्यालंकारभावो लोकवत् काव्येऽपि सम्मतः।

५३. वही, २४५, तत्र प्रथमं शब्दार्थोभयगतत्वेन त्रैविध्यमलंकारवर्गस्य।

५४. वही पृ. २४५, अर्थालङ्लाकराणां चातुर्विध्यम्। केचित प्रतीयमानवस्तवः केचित् प्रतीयामानौपम्पाः केचित् प्रतीयमानरससभा-वाद्यः। केचिदस्फुटप्रतीयमाना इति।

५५. प्रतापरुद्रयशोभूषणम् पृ. २४५, साधर्म्ये त्रिविधम्। भेदप्रधानमभेदप्रधानं भेदाभेदप्रधानं चेत।

५६. वही पृ. २४६, विभावनाविशेषोक्तिविषम-चित्रासङ्गत्यन्योन्यव्याधातातद्गुणभाविक-विशेणानांविरोधमूलता।

५७. वही पृ. २४६, यथासंख्यपरिसंख्यार्थापत्ति-विकल्पसमुच्चयानां वाक्यन्यायमूलता।

५८. वही पृ. २४६, परिवृत्ति प्रत्यनीक तद्गुणसमाधिसमस्व भावोक्त्युदात्त विनोक्तयो-लोकव्यवहारमूला।

५९. वही पृ.२४६, काव्यलिङ्गानुमानार्थन्तर-न्यासानां तर्कन्यायमूलता।

६०. वही पृ. २४६, कारणमालैकावलीमाला-दीपकसाराः श्रृंखलावैचित्र्यमूलाः।

६१. वही पृ. २४६, व्याजोक्तिक्रोक्ति मीनान्य-पह्वमूलानि।

६२. वही पृ. २४६, समासोक्तिपरिकरौ विशेष-पवैचित्र्यमूलौ।

-Smt. Rajkumari w/o Dr. Hemendra kumar
Banwari Clinic, Shakti Nagar, Maholi Road, Mathura (Uttar Prasesh)
Pin code-281004
Mobile n. 9412551054 e-mail-rajsikarwarmtr@gmail-com

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

ग्रीष्म ऋतु में आहार-विहार

- कृष्णचन्द्र टवाणी

आजकल सूर्य की प्रचंड किरणों से तपती धरती एवं गर्म हवाओं के कारण सभी प्राणी परेशान हैं तथा ठंडक में रहने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश करते रहते हैं। शीतलता की चाह में हिल स्टेशन (पहाड़ों), समुद्र, नदी, तालाब के किनारे विश्राम हेतु जाना चाहते हैं। पहले घने पेड़ों की छाँव में तथा कुएँ, बावड़ी के ठंडे पानी में नहाने से राहत मिलती थी। किंतु आज प्रकृति दोहन वृक्षों की कटाई तथा जल स्रोतों के सूखने के कारण पारा निरंतर ऊँचाई की ओर चढ़ रहा है। वृक्षों की कमी, भूमि में जल की कमी, हवा में भीषण लू से कहीं भी ठंडक-शीतलता का नामोनिशान नहीं है। चारों ओर गर्मी हो रही है। घर के बाहर निकलें तो भर पेट पानी पीकर निकलें तथा पानी साथ में रखना भी जरूरी है। गर्मी में प्यास अधिक लगती है क्योंकि लू गर्मी और तपिश के कारण शरीर का जल पसीने के रूप में बाहर निकल जाता है। ऐसी अवस्था में पतले दस्त हो जाएं तो शरीर से रहा सहा पानी भी दस्तों के रूप में निकल जाता है। उसके साथ शरीर से लवणों का क्षय भी हो जाता है। अत: शरीर में जल-लवण का अनुपात उचित मात्रा में होना जरूरी है। गर्मी के मौसम में हैजा, पेचिश, पेट दर्द आदि से बचाव का तरीका है कि जहाँ तक संभव हो घर से बाहर खाना-पीना बंद कर दें, ताकि संक्रमण की संभावना नगण्य रहे।

खान-पान में सावधानी :- गर्मी के मौसम में जठराग्नि मंद होने से भूख कम लगती है। अत: सुपाच्य, तरल और पोषक भोजन करना चाहिए। भूख से अधिक भोजन न करें अपितु भूख से कम खाएं। गर्मी के कारण भोजन भी जल्दी विषाक्त हो जाता है। अत: खन-पान में विशेष सावधानी बरतना चाहिए। भोजन एवं नाश्ते में मावे की मिठाईयों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि शुद्ध मावा एवं दूध मिला आजकल बहुत मुश्किल है। बाजार में जो मावे की मिठाईयाँ मिलती है उनमें मिलावट ज्यादा होती है। दूध व दही की लस्सी भी इस मौसम में घर पर बनाकर ही पीना चाहिए। शीतल पेय शर्बत आदि में भी कृत्रिम रंगों का उपयोग हो रहा है। कटे हुए फल, सलाद आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। क्योंकि मक्खी, मच्छर, मिट्टी आदि के कारण यह विषाक्त हो जाते हैं। गर्मी के मौसम में चाय, काफी, तेज, मिर्च मसाले, अचार आदि का सेवन

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। ब्रेड, समोसे, कचौरी, पकौड़ी, मिर्ची–बड़ा तली हुई चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए। खाद्य पदार्थों जैसे ब्रेड, डबल रोटी, बिस्कुट, नमकीन, शर्बत, जूस आदि को खरीदते समय उनके पैकिंग की दिनांक अवश्य देखकर खरीदना चाहिए।

गर्मियों में स्वच्छ पानी व पेय पदार्थों का सेवन ज्यादा करें तथा ऐसे पदार्थ जिनमें जल की मात्रा अधिक हो उनका प्रयोग करें। खाने में फलों एवं सब्जियों की मात्रा बढ़ायें। खीरा ककड़ी, टमाटर, प्याज, चकुन्दर आदि की सलाद प्रतिदिन लेवें। ग्रीष्म त्रतु में अर्जीण, पेचिश, हैजा, लू लगना आम बात होती है। बच्चों को यह बीमारियाँ ज्यादा होती है। बच्चों को बाजार में बिकने वाले बर्फ के गोले, आईसक्रीम तथा फास्ट फूड नहीं खिलाना चाहिए।

शीतलता प्रदायक हितकारी पदार्थ : ग्रीष्म ऋतु में सेवन करने योग्य उपयोगी पदार्थों की जानकारी नीचे दी जा रही है–

* नमक जीरा डालकर छाछ पीना ज्यादा लाभकारी होता है। यह भोजन को पचाती है तथा शरीर को ऊर्जा (एनर्जी) देती है।

* नारियल पानी में ज्यादा पौष्टिक तत्त्व होते हैं। नारियल पानी शरीर के तापमान को संतुलित करता है इसलिए रोजाना एक गिलास नारियल पानी पीना चाहिए।

* मौसम्मी, नारंगी का रस तथा ग्लूकोज का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए।

* साफ सुथरा शुद्ध गन्ने के रस में नींबू, पोदीना का रस मिलाकर पीने से शीतलता मिलती है।

* बेल का शर्बत या जूस भी गर्मी दूर करता है। प्रातःकाल एक गिलास बेल का जूस थोड़ी पीसी हुई कालीमिर्च डालकर पीना चाहिए।

* रोज सुबह ताजा अनार का रस पीयें यह शरीर की गर्मी दूर करता है।

* नित्य तरबूज खाने एवं उसका ठंडा–ठंडा शरबत पीने से शरीर को शीतलता तो मिलती ही है साथ ही चेहरे पर एक चमक भी आ जाती है।

* सबेरे खाली पेट शहद या नमक के साथ नींबू का रस लेना अच्छा रहता है।

* आँवला, सेब का मुरब्बा एवं गुलकंद प्रतिदिन लेने से शीतलता प्रदान करता है।

* पोदीने का सेवन चटनी, सूप तथा सब्जियों में अधिकाधिक करना बहुत ही लाभप्रद है। वातनाशक होने के कारण पुदीना गैस बनने, उदरवायु और बदहजमी जैसे पाचन सम्बन्धी विकारों में अत्यन्त गुणकारी है।

* दोपहर में नींबू की सिंकजी पीने से ताजगी रहती है।

* गर्मियों के फलों आम, खरबूजा, तरबूज, लीची, शहतूत, फालसा, आलू–बुखारा आदि का सेवन भी शीतलता प्रदान करता है।

* फालसा, शहतूत, जीरा, धनिया, सौंफ, बेल, नारंगी, खस, गुलाब, लीची तथा नींबू आदि

के शर्बत का प्रयोग हितकारी तथा स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

* ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल अथवा सायंकाल ठण्डाई का सेवन करना चाहिए। ठण्डाई के नियमित सेवन से शरीर में ताजगी, स्फूर्ति एवं शीतलता रहती है।

* भोजन करने के पश्चात् तरबूज का रस पीने से भोजन शीघ्र पच जाता है। इससे नींद भी अच्छी आती है एवं लू लगने का अंदेशा भी नहीं रहता है।

* गर्मी में पेट में अचानक दर्द उठे तो अदरक और पोदीने के रस में थोड़ा सैंधा नमक मिलाकर सेवन करें।

* गर्मी में बच्चों के प्रायः फोड़े फुसियाँ निकलती रहती है। खस का शर्बत नियमित पीते रहने से गर्मी के मौसम में होने वाले चर्म रोग ठीक हो जाते है।

* नीम की कोपलों को चेत एवं वैसाख मास में कालीमिर्च एवं मिश्री के साथ सेवन करने से फोड़े-फुंसी एवं मलेरिया बुखार आदि नहीं होते हैं।

* जौ के आटे से बना सत्तू का सेवन करने से पेट को ठंडक मिलती है, तृष्णा शांत होती है।

पेचिस :- तुलसी की पत्ती को शक्कर के साथ खिलाने से पेचिस दूर होती है। पके हुए बेल का शर्बत पिलाने से लाभ होता है। भिंडी की सब्जी खाने से भी लाभ होता है। मट्ठे में एक चम्मच भुना हुआ जीरा मिलाकर नित्य सुबह शाम लेना चाहिए।

हैजा:-

* हैजा से बचने के लिए प्याज पास में रखना चाहिए।

* नींबू को काटकर उसमें कालीमिर्च व नमक भर कर चूसने से लाभ होता है।

* अमृतधारा की १-२ बूंद एक चम्मच पानी में डालकर आधा-आधा घंटे में लेने से लाभ होता है।

* पोदीने के पत्तों का रस पीने से लाभ होता है।

* आधे नींबू के रस में पाँच तोला पानी मिलाकर एक माशा जीरा व एक माशा इलायची का चूर्ण डालकर पीनें से लाभ होता है।

* तुलसी के पत्तों के रस में इलायची का चूर्ण मिलाकर पीने से लाभ होता है।

* तुलसी के पत्ते व कालीमिर्च पीसकर गोली बनाकर देने से लाभ होता है।

लू से बचाव :

* घर से बाहर जाने से पहले छाछ पीकर निकलने से लू नहीं लगती।

* ग्रीष्मकाल में एक प्याज को (ऊपर का छलका हटाकर) अपनी जेब में रखने मात्र से लू नहीं लगती। साथ ही दिन में दोनों समय बच्चे प्याज को भोजन के साथ खाने से रक्षा होगी।

* गर्मी में बार-बार पानी पीने से लू नहीं लगती। बाहर निकलने के पहले खूब पानी पी लेना चाहिए।

* गर्मियों में सिरदर्द हो, लू लग जाये, आँखें लाल हो जायें तब अनार का शरबत गुणकारी सिद्ध होता है।

* एक बड़ा कच्चा आम (केरी) उबाल ले या गर्म राख में सेक लें फिर उसे कुछ देर के लिए ठंडे पानी में रखें, जब ठंडा हो जाए तब छिलका उतार कर दही की तरह मथ कर इसके गूदे में गुड या मिश्री, भूना जीरा, धनिया या पुदीना, सेंधा नमक और काली मिर्च डालकर एक बार पुनः इसे अच्छी तरह मथ लें और आवश्यकतानुसार पानी मिला लें। चाहें तो बर्फ मिलाकर एक-एक कप दिन में तीन-चार बार इसका सेवन करें तो लू में आश्चर्यजनक लाभ होगा। लू लगने की जलन व बैचेनी भी नष्ट होती है तथा रोगी की प्यास बुझती है। यह लू उतारने की प्रसिद्ध औषधी है।

* गर्मी में पानी में धनिया व शर्करा मिलाकर पीने से लू नहीं लगती।

* बाहर जाने से पहले मुँह में एक इलायची रख ले। लू नहीं लगेगी।

* तुलसी के पत्तों का रस चीनी में मिलाकर पीने से लू नहीं लगती, चक्कर नहीं आते।

* एक गिलास पानी में नींबू निचोड़कर थोड़ी सी मिश्री मिलाकर पीने से लू का प्रभाव कम हो जाता है।

* लू से बचने के लिए शहतूत खाएं।

* लू लगने पर अमृतधारा की दो बूंद आधा कप ठंडे पानी में पीने से फायदा होता है। उल्टी या जी मिचलाने, पेट दर्द, अफारा, बदहजमी आदि रोगों में ३-४ बूंदे अमृतधारा पानी में डालकर सेवन करने से लाभ होता है।

* लू लगने पर पकी हुई इमली के गूदे को हाथ और पैरों के तलवों पर मलने से लू का असर मिटता है।

* गर्मी में इमली के पानी में गुड़ एवं पोदीना मिलाकर पीना लाभदायक होता है।

* लू लगने पर फालसे का शरबत पीएं, इससे शरीर की अनावश्यक गर्मी शांत हो जाती है।

* जौ के आटे में पिसी हुई प्याज मिलाकर, शरीर पर लेप करने से लू में फौरन आराम मिलता है। यह उष्णता को दूर कर शीतलता प्रदान करता है।

* प्याज के रस में मिश्री, पीसा जीरा, नमक मिलाकर पीने से लू का प्रकोप कम हो जाता है।

* लू लगने पर प्याज के रस से कनपटियों और छाती पर मालिश करें। चौबीस घंटे में विकार शांत हो जाएगा।

* प्याज को कसकर तलुवों पर लगाने से लू का प्रकोप कम हो जाता है। दिन में दो-तीन बार लगावे।

रसों का सेवन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

* रसों में शक्कर, चीनी, गुड़, नमक आदि कुछ भी नहीं मिलाएँ।

* फलों तथा सब्जियों के रसों को आपस में न

मिलाएं, एक बार में एक ही फल या सब्जी का रस लें।

* रस ताजा ही पीना चाहिए। फ्रिज आदि में रस को नहीं रखें।

* बर्फ नहीं मिलाएं तथा नमक या मसाला न मिलाएं।

* भोजन के साथ रस नहीं पिएं। जब-जब भी रस पिएं तो साथ में और कुछ नहीं खाएं-पिएं।

* रस को धीरे-धीरे स्वाद लेकर पिंए एक साथ नहीं गटकें।

* रसों को एल्युमिनियम या पीतल के बर्तनों में न रखें।

* रस को गर्म न करें। इससे उसके विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त प्रकार से गर्मी के मौसम में आहार-विहार करने से आप भीषण गर्मी के प्रकोप से बच सकते हैं। प्रतिदिन प्रात:काल खुली हवा में घूमने जाएँ। जो आपके तन-मन में स्फूर्ति का प्रवाह करेगा। प्रतिदिन जो जितना हँसता है, मुस्कराता है वह उतना ही प्रसन्नचित्त, स्वस्थ सुखी, आनंदमय एवं दीर्घायु होता है। हँसने वाले व्यक्ति से सभी मिलना चाहते हैं। इसलिए हँसते रहिये-मुस्कराते रहिये, व्यस्त रहिये तो आपको गर्मी का अनुभव कम होगा। दिन भर के शारीरिक-मानसिक श्रम के पश्चात् आदमी थक जाता है। इसलिए सायंकाल को स्नान अवश्य करें। सारी थकान दूर हो जायेगी। फिर हल्का सुपाच्य भोजन करके आधा घंटा खुली जगह में घूमने के पश्चात् विश्राम करें तो नींद अच्छी आयेगी और आप जब प्रात:काल उठेंगे तो अपने को तरोताजा पायेंगे।

- ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ - 305801 (राज.)।

मो : 9232988221

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

भारतीय सनातन संस्कृति में 'गाय' का महत्त्व

- निर्मल कौशिक

भारतीय सनातन धर्म और संस्कृति में गाय का विशेष महत्त्व है। वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में मैनाक पर्वत हनुमान जी को सनातन धर्म का लक्षण बताते हुए कहते हैं

कृते च प्रतिकर्त्तव्यम्, एष धर्मः सनातनः ।।

अर्थात् हमारे प्रति जिसने उपकार किया हो उसके बदले में उसका उपकार करके उसके प्रति कृतज्ञ होना ही सनातन धर्म है।

हम सब भली भाँति जानते हैं कि भारत में पशु-पक्षियों, पेड़ों, पर्वतों, नदियों की पूजा की जाती है। ईश्वर सृष्टि के कण-कण में सभी जीवों में विद्यमान है। गंगा, गीता, गाय, गायत्री और गार्गी सभी हमारे लिए वन्दीय है। ऋग्वेद में गाय की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि

भुक्त्वा तृणानि शुष्काणि
पीत्वा तोयं जलाशयात्।
दुग्धं ददति लोकेभ्यो
गावो विश्वस्य मातरः ।।

सूखे तिनके (घास) खाकर और तालाब का जल पीकर सारे संसार को दूध देने वाली गाय पूरे विश्व की माता है।

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठतः एव च।
गावो मे सर्वतश्च गवां मध्ये वसाम्यहम्।।

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं कि नित्य प्रति मेरे आगे पीछे गाएं हो, मेरे सब और गाये हों, मैं गायों के मध्य में निवास करूँ।

मानस हौं तो वही रसखानि
बसौ मिलि गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारण।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि
कालिंदी फूल कदम्ब की डारन।।

इस प्रकार हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रसखान ने मुसलमान होते हुए भी यही इच्छा व्यक्त की है कि अगर अगले जन्म में मुझे पशु योनि मिले हो मैं नंद की गौओं में चरने का सौभाग्य प्राप्त करूँ ताकि कृष्ण जी से मिल सकूं। अगर पत्थर बनूं तो उसी पर्वत का जिस गोवर्धन पर्वत को श्रीकृष्ण जी ने धारण किया था। अगर मैं पक्षी बनूं तो उसी कदम्ब के पेड़ पर अपना घौंसला बना कर रहूँ जिस की डाली पर बैठ कर श्रीकृष्ण जी मधुर बासुरी बजाया करते थे।

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से लेकर आज तक हम गौ कि महिमा की अनेक कथाएं सुनते आए हैं। हमारे गुरुकुलों में ऋषियों के आश्रमों में पलने वाली गौओं की सेवा वहां के पढ़ने वाले शिक्षार्थी ब्रह्मचारी ही किया करते थे। हमारे घरों में गौ के गोबर से लेपन होता था

क्योंकि गौ का गोबर रोग-शोक नाशक और सुख समृद्धि वर्धक होता है। पंच गव्य हमारी जीवन शैली को पुष्ट करने वाला होता है। इसी से पंचामृत तैयार होता है। गाय का दूध, दही, घी, अमृत तुल्य है। शादी के मंडप में गोदान की परम्परा है जो अब प्रतीकात्मक मात्र ही रह गई है। हमारे गोत्र भी 'गाय' से सम्बद्ध है। पुराने समय में ऋषियों की आश्रम पद्धति में जिस की गाय जिस ऋषि के आश्रम में बँधती थी उस कुल का गोत्र भी उसी ऋषि के नाम पर रखा जाता था।

हम लोग बचपन में छोटी कक्षा में १०-१५ पंक्तियों का 'गाय' विषय पर निबन्ध लिखा करते थे। पूरा रेखाचित्र लिखने के बाद हम अन्तिम पंक्ति लिखते थे कि गाय को हिन्दू धर्म के लोग पूजते हैं क्योंकि वे इसे अपनी 'माता' मानते हैं। ध्यान रहे सनातन धर्म के ग्रन्थों में प्रत्येक हिन्दू के लिए छ: माताएँ मान्य है। जननी, गुरुमाता, दुर्गा माता, गंगा माता, धरती माता और गौ माता। इसलिए 'गाय' हमारे लिए माता के समान ही वन्दनीय और पूजनीय है। यहां तक कि गौ माता की प्रदक्षिणा करने मात्र से ही मनुष्य अनेक पुण्यों को प्राप्त कर लेता है।

गवां गोष्ठे स्थितानां तु यः करोति प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणा कृता तेन जगतः सदसदात्मकाम्।।

जौ गौशाला स्थित गौओं की प्रदक्षिणा करता है उसने मानों सम्पूर्ण विश्व की परिक्रमा कर ली। हमारे धर्म ग्रन्थों में वर्णित है कि गाय में अठसठ (६८) करोड़ तीर्थों और ३३ कोटि देवी-देवताओं का निवास है। हमारे ऋषियों-मुनियों के आश्रमों में हजारों गौएँ थी। गांव के मुखियों के पद भी उनके पास गौओं की संख्या के आधार पर ही निर्धारित किए जाते थे। पुरा काल में वृषभानु पद १० लाख गौएँ, नन्द पद नौ लाख गौएँ, उपनन्द पद पाँच लाख गौओं का स्वामी होने पर मिलते थे। गाय के महत्त्व को दर्शाते हुए संस्कृत में एक श्लोक वर्णित है-

यत्र गावः प्रसन्ना स्युः प्रसन्ना तत्र सम्पदः।
यत्र गावो विषण्णाः स्युः विषण्णास्तत्र सम्पदः।

अर्थात् जहाँ गाएँ प्रसन्न रहती है वहाँ सारी सम्पदाएँ प्रसन्न रहती है, जहाँ गाएँ दुखी रहती हैं वहां सम्पदाएं दुःखी होकर लुप्त हो जाती हैं। गोप, गोपी, गोपाल सभी गाय के कारण प्रसन्न रहते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि-

गाय में, वेद में, ओंकार में, सूर्य में, गायत्री मन्त्र में और वेदत्रयी (ज्ञान, कर्म, उपासना) में कोई अन्तर नहीं। अत: गाय की सेवा ही नहीं उपासना भी करनी चाहिए। गाय की सेवा भगवत्प्राप्ति का सरलतम मार्ग है।

खेद का विषय हे कि गाय के चरने वाले स्थान खेत, खलिहान, जंगल सब नष्ट कर दिये गए। गाय चल फिर कर घूम-घूम कर घास फूस खाती थी। अब खूंटे पर खड़ी रह कर चारा खाती है। उसकी गतिशीलता खत्म हो गई है। कृत्रिम भोजन खाकर कैसा दूध देती है हम सब जानते है।

हवन, यज्ञादि करने पूर्व भी पृथ्वी पर गाय के गोबर से लेप किया जाता है और पृथ्वी को शुद्ध किया जाता है। प्राय: यह कहा जाता है कि -

गौः स्वर्गस्य सोपानम्

अर्थात् गाय स्वर्ग की सीढ़ी है। गाय की

सेवा से ही गाय प्रसन्न होती है। गाय के प्रसन्न होने से ईश्वर प्रसन्न होते हैं तभी स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त होता है।

बृहत् पराशर स्मृति में गाय के सींगों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गाय के सींग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु और अग्र भाग में शंकर जी का निवास है। तीनों देव गाय के सींगों में प्रतिष्ठित हैं।

श्रृंगमूले स्थितो ब्रह्मा, श्रृंगमध्ये तु केशवः।
श्रृंगाग्रे शंकरं विद्यात् त्रयोः देवाः प्रतिष्ठिताः।।

आगे कहा गया है कि गाय को स्पर्श करने के बाद गाय को नमस्कार करके जो गाय की प्रदक्षिणा करता है, मानो वह सप्त द्वीप की परिक्रमा कर लेता है।

संस्पृशन् गां नमस्कृत्य
कुर्यात् ताञ्च प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणी कृता तेन
सप्तद्वीपा वसुन्धरा।।

गाय को चारा, पानी खिलाने-पिलाने वाला सौ अश्वमेघ यज्ञों का पुण्य प्राप्त करता है। गाय को सहलाना, सफाई करना, गौशाला में धुआं करना गोदान करने जैसा पुण्य प्राप्त करता है। ऋषि पाराशर कहते हैं ब्रह्मा जी ने एक ही कुल के दो भाग किए इसलिए गाय और ब्राह्माण दोनों ही मानव समाज में वन्दनीय और पूजनीय हैं। क्योंकि ब्राह्मणों के पास मन्त्र शक्ति है और गाय के पास हविष्य शक्ति। गाय के घी की आहुति के बिना हवन-यज्ञ सम्पन्न नहीं होता और मन्त्र शक्ति के बिना यज्ञ में आहुति नहीं दी जा सकती।

त्वं माता सर्व तीर्थानां,
त्वं च यज्ञस्य कारणम्।
त्वं तीर्थः सर्वतीर्थानां,
नमस्तेऽस्तु सदानघे।।

ऋग्वेद में गाय को अघ्न्या कहकर इसे देवत्व प्रदान किया गया है अर्थात् इसका वध नहीं किया जा सकता। गाय का दर्शन करते ही **'श्री सुरभ्यै नमः'** कहकर उसे नमस्कार करें और **'स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापम्'** उसका स्पर्श करते हुए प्रार्थना करे कि हे गौ माता! मेरे पापों का शमन करें। गाय का स्पर्श पापों को नष्ट कर देता है। गाय की महिमा को समझने के लिए विचारों की पावनता और निर्मलता का होना आवश्यक है। जो मनुष्य गौओं के खुर से लगी हुई धूलि को मस्तक पर लगाता है वह पाप मुक्त हो जाता है। जिस स्थान पर गौएं रहती है वह स्थान 'तीर्थ स्थल' बन जाता है। भूख प्यास से व्याकुल, दुबली, रोगी, घायल गौओं की अपने माता-पिता के समान सेवा करनी चाहिए। गौ को केवल माता ही न कहें अपितु अपनी मातावत् समझ कर सेवा भी करें ताकि आपका जीवन भी सफल हो। किसी विद्वान ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण सुन्दर बात कही है कि नारी, गौ और ब्राह्मण को कभी भी दु:खी नहीं करना (सताना नहीं) चाहिए।

जो नारी सताए तीन मिटे रावण, कौरव और कंस।
गो, ब्राह्मण सताए तो मिटे, धन, वैभव और वंश।।

- सेवामुक्त प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, सरकारी कालेज, फरीदकोट (पंजाब)
मो : 99157-02843

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७४, सं. ६
सितम्बर ,२०२५

न्याय दर्शन के अनुसार 'बन्धन और मोक्ष'-विचार

- मुनि सत्यदेव

जब हम भारतीय दर्शनों के बारे में विचार-विमर्श करते हैं, तो उनमें नौ (९) दर्शनों के नाम प्रमुख रूप से जाने जाते हैं। ये नौ नाम हैं-१. चावार्क, २. जैन, ३. बौद्ध, ४. न्याय, ५. वैशेषिक, ६. सांख्य, ७. योग, ८. मीमांसा और ९. वेदान्त दर्शन। इन दर्शनों को दो वर्गों मे विभक्त किया गया है। प्रथम वर्ग उनका है, जो वेद और वैदिक मान्यताओं में विश्वास रखते हैं, इन्हें आस्तिक दर्शन (Orthodox) कहते हैं। इनमें मुख्य रूप से छ: भारतीय दर्शन आते हैं, जिनके नाम हैं-१. सांख्य, २. योग, ३. न्याय, ४. वैशेषिक, ५. मीमांक्षा तथा ६. वेदान्त। दूसरे वर्ग में वे दर्शन आते हैं, जो वेद को प्रमाण नहीं मानते है और न ही वैदिक-मान्यताओं में विश्वास रखते। इनको नास्तिक (Heterdox) के नाम से जाना जाता है, ये हैं- १. चावार्क-दर्शन, २. जैन-दर्शन और ३. बौद्ध-दर्शन।

भारत के छ: आस्तिक दर्शनों को तीन जोड़े के रूप में स्वीकार किया जाता है। ये तीन जोड़े एक-दूसरे के प्रतिपाद्य विषय का समर्थन करते हैं, ये तीन जोड़े हैं-१. सांख्य-योग दर्शन, २. न्याय-वैशेषिक दर्शन तथा ३. मीमांसा-वेदान्त। तात्पर्य यह है कि ये तीनों जोड़े अपने विशेष प्रतिपाद्य अर्थ= विषय=पदार्थ का विवरण प्रस्तुत करते हुये एक-दूसरे के पूरक हैं।

न्यायदर्शन के रचयिता महर्षि गौतम हैं और उनका संस्कारिक नाम 'मेधातिथि' है, इन्हें 'अक्षपाद' के नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि पहले कहा गया है-न्याय व वैशेषिक दर्शन एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि वैशेषिक-दर्शन पदार्थों और उनके गुणों व स्वरूप के बारे में बताता है, तो न्याय-दर्शन पदार्थों को जानने की प्रक्रिया के बारे में बताता हे।

न्याय दर्शन में कुल पाँच अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं। पाँचों अध्यायों के सूत्रों की कुल संख्या-५३० है। इन सूत्रों का प्रामाणिक भाष्य महर्षि वात्स्यायन ने किया है, और कहा है-''प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्याय:।'' अर्थात् प्रमाणों द्वारा अर्थ=विषय या पदार्थ का परीक्षण ही 'न्याय' है। दूसरे शब्दों में-प्रमाणों के आधार पर किसी निर्णय पर पहुँचना ही 'न्याय' है। यह मुख्य रूप से 'तर्क शास्त्र' और 'ज्ञान मीमांसा' है। इसलिए न्यायदर्शन को तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र, हेतु विद्या, वादविद्या तथा

आन्वीक्षिकी भी कहा जाता है।

न्याय-दर्शन का मुख्य विषय प्रमाण है। इस दर्शन का अधिक भाग-प्रमाण के स्वरूप और उसके प्रयोग की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है। प्रमाणों के द्वारा ही आत्मा के स्वरूप को पहचानना ही इस दर्शन का विषय है।

सत्य की खोज के लिए तथा अपने व्यवहार को शुद्ध-सात्विक बनाने के लिए न्याय-दर्शन में वर्णित न्याय विद्या का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। यदि शुद्ध एवं सत्य बोलना चाहते हैं तो प्रमाण और तर्क से सोचना व बोलना चाहिए। अपने व्यवहार को शुद्ध-सात्विक करने के लिए ऐसा करना परम-आवश्यक है।

बन्धन एवं मोक्ष-विचार

न्याय-दर्शन में अन्य भारतीय दर्शनों की भाँति ही जीवन का चरम लक्ष्य सभी दु:खों से निवृत्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष के स्वरूप और उसके प्राप्त करने के साधन से पूर्व बन्धन के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है।

बन्धन:- न्याय दर्शन के मतानुसार आत्मा की सत्ता शरीर, इन्द्रिय और मन-बुद्धि से पृथक् है, परन्तु अविद्या-अज्ञान के कारण मनुष्य अपनी आत्म-सत्ता (आत्मा) को शरीर, इन्द्रिय, मन-बुद्धि से पृथक् नहीं समझता। इसके विपरीत वह शरीर, इन्द्रिय, मन-बुद्धि को अपना अङ्ग समझने लगता है। इन विषयों के साथ मनुष्य तादात्म्यता स्थापित कर लेता है और सत्यमार्ग से दूर हटकर असत्य-मिथ्या मार्ग पर चल पड़ता है। यह उसका भ्रम व भटकाव का मार्ग है, जो उसे बन्धन की बेड़ियों में जकड़े रहता है। बन्धन की अवस्था में मानव-मन में गलत धारणायें निवास करने लगती हैं, इनमें कुछ गलत धारणायें निम्नाङ्कित हैं-

१. अनात्म तत्त्व को आत्मा समझना।
२. क्षणिक वस्तु को स्थाई समझना।
३. दु:ख को सुख समझना।
४. अप्रिय वस्तु को प्रिय समझना।
५. कर्म एवं कर्म-फल का निषेध करना।
६. अपवर्ग (मोक्ष) के सम्बन्ध में सन्देह करना।

बन्धन की अवस्था में आत्मा को सांसारिक दु:खों के अधीन रहना पड़ता है और जब तक अविद्या रहती है, आत्मा को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार जीवन के दु:खों को सहना तथा पुन: पुन: जन्म ग्रहण करना ही बन्धन है। बन्धन का अन्त मोक्ष है।

मोक्ष:-नैयायिकों के अनुसार-दु:ख के पूर्ण निरोध की अवस्था की 'मोक्ष' है। मोक्ष को 'अपवर्ग' भी कहते हैं। अपवर्ग का अर्थ है-शरीर और इन्द्रियों के बन्धन से आत्मा का मुक्त होना। जब तक आत्मा शरीर, इन्द्रिय और मन से ग्रसित रहती है, तब तक उसे दु:ख से पूर्ण छुटकारा नहीं मिल सकता। महर्षि गौतम ने दु:ख के आत्यन्तिक उच्छेद को 'मोक्ष' कहा है।

कई बार हमें प्रगाढ़ निद्रा के समय अथवा

किसी रोग/बीमारी से छुटकारा मिलने पर दु:ख से मुक्ति मिल जाती है, किन्तु इसे 'मोक्ष' नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि इन अवस्थाओं में दु:ख से छुटकारा कुछ ही काल के लिये मिलता है। पुन: दु:ख की अनुभूति होती है। इसके विपरीत दु:खों से सदा के लिए मुक्त हो जाने का नाम 'मोक्ष' है। सूत्र इस प्रकार है- "तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग:।"

अपवर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त करने के उपाय:-

जिज्ञासु के मन में सहज प्रश्न उत्पन्न होता है कि मोक्ष प्राप्त करने के उपाय/साधन क्या हैं? नैयायिकों के मतानुसार सांसारिक दु:खों अथवा बन्धन का मूल कारण मनुष्य (आत्मा) की अविद्या या अज्ञान है और अज्ञान/अविद्या का नाश तत्त्वज्ञान से ही सम्भव है। मनुष्य (आत्मा) को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर अविद्या एवं मिथ्याज्ञान स्वयं दूर हो जाता है, जैसे कि प्रकाश के आने पर अँधेरा नहीं रहता।

शरीर को आत्मा समझना मिथ्या ज्ञान है। इस मिथ्या ज्ञान का नाश तभी हो सकता है, जब कि मनुष्य अपनी आत्मा को शरीर, इन्द्रियों व मन से पृथक समझे। इसलिये तत्त्वज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक है।

उपाय:- मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति के लिए न्याय-दर्शन के मतानुसार षोडश (१६) पदार्थों के बारे में तत्त्व-ज्ञान (सत्य ज्ञान या यथार्थज्ञान) प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है, उन सोलह (१६) पदार्थों के नाम इस प्रकार है:-

१. **प्रमाण:-** ये मुख्यरूप से चार हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द।

२. **प्रमेय:-** ये १२ हैं- आत्मा, शरीर, इन्द्रियाँ, अर्थ, बुद्धि/ज्ञान/उपलब्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु:ख और अपवर्ग।

३. संशय,

४. प्रयोजन

५. दृष्टान्त

६. सिद्धान्त-ये चार प्रकार के हैं-सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम सिद्धान्त।

७. अवयव

८. तर्क

९. निर्णय

१०.वाद

११.जल्प

१२.वितण्डा

१३.हेत्वाभास

१४.छल

१५.जाति

१६.निग्रह स्थान

उपर्युक्त १६ पदार्थों का तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद मन में प्रश्न उठता है कि वह 'तत्त्वज्ञान उत्पन्न कैसे होता है, इसका उत्तर दर्शनकार ने इस प्रकार दिया है:- "समाधि विशेषाभ्यासात्।" (न्या.द्र.४.२.३८)

अर्थात् समाधि विशेष के अभ्यास से

तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

* बाह्य विषयों से विचारपूर्वक इन्द्रियों को हटाकर तथ मन (चिन्त) की वृत्तियों का प्रयत्न एवं अभ्यास-पूर्वक निरोध करके, उसे अपने आत्मा के साथ जोड़ लेना समाधि का स्वरूप है।

* आत्मा की शुद्धि के लिए राग, द्वेष, मोह-इन तीन दोषों को दूर करना आवश्यक है, इन दोषों के कारण चित्त की एकाग्रता नहीं हो पाती।

* राग-द्वेष आदि दोषों को दूर करने के लिए समभाव (समता) का अभ्यास करना आवश्यक है।

* मोह (अविद्या/अज्ञान) को दूर करने के लिये, वेद, उपनिषद्, दर्शन ग्रन्थों का स्वाध्याय, चिन्तन, मनन एवं शंका-समाधान करना परम हितकर हैं।

अपने दोषों को दूर करने में **यम** व **नियम** के पालन से सहयोग मिलता है तथा गायत्री मन्त्र अथवा प्रणव का जप करने एवं अन्य शास्त्रीय उपायों के निरन्तर अभ्यास से ममाधि-सिद्धि की ओर साधक अग्रसर होने लगता है।

* समाधि व तत्त्वज्ञान को सिद्धि-स्तर तक पहुँचाने के लिए आत्मज्ञान से सम्बन्धित शास्त्रों का निरन्तर स्वाध्याय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और संवाद -परिचर्चा करते रहना चाहिए। इनके अभ्यास का फल यह होता है कि मनुष्य आत्मा को शरीर से भिन्न समझने लगता है। मनुष्य के मिथ्या ज्ञान या भ्रमात्मक ज्ञान ("मैं शरीर और मन हूँ") का अन्त हो जाता है। साधक मनुष्य को अपने पुरुषार्थ, प्रयत्न और निरन्तर स्वाध्याय, सत्सङ्ग, श्रवण-मनन व निदिध्यासन के अभ्यास से आत्म-ज्ञान होता है। आत्मा को जकड़ने वाले धर्म और अधर्म का सर्वप्रथम नाश हो जाने से, शरीर और ज्ञानेन्द्रियों का विचार समाप्त हो जाता है। साधक-आत्मा को वासनाओं तथा प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त होती है।

इस प्रकार साधक मनुष्य की आत्मा पुनर्जन्म एवं दुःख से मुक्त हो जाती है। यही मोक्ष है और यही अपवर्ग भी कहलाता है।

507-गोदावरी ब्लाक, अशोकासिटी, कृष्णा नगर, मथुरा 281004
मो. 8630506105

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

हिन्दी साहित्य में राम काव्य की परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास

- विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

हिन्दी साहित्य में राम काव्य की परम्परा का सूत्रपात कब हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। आधुनिक खोजों से सातवीं शताब्दी में चतुर्भुज स्वयंभू, भूपति कवि (सन् १२८५ई०), भगवतदास और चन्द्र के नाम मिलते हैं जिन्होंने राम कथा के संबंध में रचनाएँ की हैं। मुनिलाल कवि कृत 'राम प्रकाश' (सन् १५८५ई०) रीति परम्परा का ग्रंथ है। इन ग्रंथों में राम भक्ति का वास्तविक रूप नहीं है।

उल्लेखनीय है कि हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास के पहले के राम काव्य के अन्तर्गत हिन्दी में राम काव्य के आदि प्रचारक रामानन्द के कुछ भक्ति पद 'पृथ्वीराज रासो' के राम विषयक कुछ छन्द आते हैं। वस्तुत: हिन्दी में राम काव्य की प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले राम भक्ति के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास ही हैं।

हिन्दी साहित्य में तुलसीदास और उनका लोकभाषा अवधी (हिन्दी) में प्रणीत रामचरितमानस का स्थान सर्वोपरि है। हिन्दी के मुसलमान कवि अब्दुर्रहीम खान-खाना ने ठीक ही कहा था कि-

रामचरितमानस विमल सन्तनजीवन प्रान।
हिन्दुवान को वेद समजम नहिं प्रगट कुरान।।

उसी प्राचीन कवि ने कथन को हाल के एक विदेशी आलोचक डॉक्टर जे.एम. मैक्फी, एम. ए., पी-एच्.डी. ने अपनी पुस्तक 'दि रामायण ऑफ तुलसीदास ऑर दि बाइबिल ऑफ नार्दन इंडिया में एक बार दुहराया है।

वस्तुत: पक्का साहित्य इसी प्रकार का सर्वव्यापक और सर्वकालीन प्रभाव डालता है। तुलसी का 'रामचरितमानस' हिन्दी का 'क्लासिक' है। जिस रचना में भाषा, मस्तिष्क और समाज भावना की व्यापक परिपक्वता होगी, वह क्लाासिक कहा जायेगा।[1]

हिन्दी साहित्य के चार कालों में [आदिकाल (वीरगाथा काल), भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल] भक्तिकाल सर्वश्रेष्ठ काल है। वह हिन्दी साहित्य का स्र्वणयुग है। उस युग में हिन्दी के दो अमर कलाकार पैदा हुए। एक व्रज भाषा के अन्धे कवि सूरदास और दूसरे गोस्वामी तुलसीदास। दोनों महान हैं और दोनों की रचनाएँ (खासकर सूरदास और रामचरितमानस) हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। पर तुलना की दृष्टि से तुलसी का व्यक्तित्व महत्तर लगता है। सूरदास ने केवल गीत लिखे, तुलसीदास ने गीतों(गीतावली इत्यादि) के साथ प्रबंध काव्य (रामचरितमानस)

भी लिखा। इस प्रकार सूरदास में गीति प्रतिभा का परिचय मिलता है, वहाँ तुलसीदास में गीति और प्रबंध दोनों की प्रतिभा मिलती है।

तुलसीदास उदार भक्त थे। उन्होंने किसी मत अथवा सम्प्रदाय का खण्डन-मण्डन नहीं किया। वह समदर्शी ओर समन्वयवादी थे। उन में किसी नीति अथवा किसी सम्प्रदाय के प्रति द्वेष भावना नहीं थी। वह सबका कल्याण चाहते थे। पुरुषोतम भगवान राम के आदर्श को प्रत्येक घर तक पहुँचाया था। राम की भक्ति में वह अपने जीवन और अपनी साधना का उत्कर्ष मानते थे। उन्होंने सेव्य-सेवक भाव से राम की उपासना की थी। वह राम को परब्रह्म और सीता को मूल प्रकृति मानते थे। उनका विश्वास था कि समस्त विश्व के मूल स्रोत होने के कारण उनके राम ज्ञानस्वरूप और मायाधीश होने के कारण वह सगुण ब्रह्म भी हैं। राम की माया ही उन के संकेत पर सृष्टि का निर्माण और संहार करती है। समस्त विश्व माया के वशीभूत है। माया जनित संसार मिथ्या है। वह राम के सत्व से प्रति भासित होकर सव्य प्रतीत होता है। ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं, जो भेद है वह केवल माया जनित है। माया का बंधन राम भक्ति द्वारा छूट सकता है। भक्ति ज्ञान की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा है। भक्ति भगवान की कृपा से प्राप्त होती है। निर्गुण ब्रह्म भक्त के प्रेम से सगुण हो जाता है। सत्संग, गुरुकृपा, नाम स्मरण, तीर्थयात्रा, ब्राह्मण सेवा, लोक निरपेक्ष भाव वासना ही प्रेम और शिव आदि देवताओं की उपासना से भक्ति पुष्ट होती है। ऐसे थे उनके दार्शनिक सिद्धान्त जिनके आधार पर उन्होंने राम को शिशु, शिष्य, पुत्र, भाई, पति, युवराज, सखा, तपस्वी, त्यागी, भक्त, रक्षक, पालक, नायक, राजा आदि कई रूपों में चित्रित कर उनके प्रत्येक रूप का एक आदर्श प्रस्तुत किया।

नारी समाज के समक्ष उन्होंने सीता को आदर्श रखा। कौशल्या के रूप में माता की, वशिष्ट के रूप में गुरु की और भरत-लक्ष्मण के रूप में भाई की प्रतिष्ठा हुई। तात्पर्य यह कि परिवार और समाज को सुसंगठित करने के लिए उन्होंने जीवन के प्रत्येक अंग को अपनी प्रतिभा से आलोकित किया और सामूहिक रूप से उन सब का समन्वय राम के व्यक्तित्व में किया।

'रामचरितमानस' तुलसीदास का सर्वाधिक वर्णनात्मक महाकाव्य है। इस में दो प्रकार की कथाओं का सन्निवेश हुआ है: प्रमुख और गौण। राम के जीवन की प्रमुख घटनाओं का उत्कर्ष दिखाने के लिए उसमें पौराणिक कथाएँ भी सम्मिलित कर दी गयी हैं। तुलसी की प्रबन्ध पटुता अत्यन्त प्रशंसनीय है। उनके कथोपकथन और चरित्र-चित्रण में उन्होंने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। मानव प्रकृति के उन्होंने अत्यन्त सुन्दर चित्र उतारे हैं। थोड़े ही शब्दों में बहुत से भावों का भर देना उनके बाएँ हाथ का खेल है। विनय, दैन्य, आत्मसर्म्पण, शील, आत्मग्लानि, क्रोध, उत्साह, घृणा, राग, विराग आदि से संबंध रखने वाले भावों के अंकन में वह अत्यन्त पटु हैं।

कवि तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में काव्य के सभी रसों का समावेश अत्यन्त सफलतापूर्वक

किया है। श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, वीभत्स, शान्त, रौद्र, भयानक और अद्भुत रसों के अनेक सुन्दर उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किए हैं। रसों की भांति ही उनका अलंकार विधान भी प्रशंसनीय है। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अनुप्रास, दृष्टान्त, उदाहरण, श्लेष, यमक आदि अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं। उनकी रचनाओं में श्रृंगार का अत्यन्त शिष्ट, मर्यादापूर्ण और मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। रति का भाव निम्न चौपाइयों में देखिए:-

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन राम हृदय गुनि।।
मानहु मदन दुदुंभी दीन्हीं।
मनसा विश्व विजय कहं कीन्हीं।।-**रामचरितमानस बालकाण्ड**

उनकी भाषा में सरलता, बोध गम्यता, सौन्दर्य, चमत्कार, प्रसाद, माधुर्य, ओज इत्यादि सभी गुणों का समावेश है।

राम काव्य परम्परा में अन्य कवियों में सर्वप्रथम स्वामी अग्रदास का नाम आता है। वह रामानन्द की प्रशिष्य परम्परा में थे और सन् १५७५ ई० में वर्तमान थे। 'हितोपदेश उपरवाणाँ बावनी', ध्यान मंजरी, राम ध्यान मंजरी और कुंडलिया नाम की उनकी चार काव्य पुस्तकें मिलती हैं। उनके शिष्य नाभादास (सन् १६०० ई०) ने भी राम काव्य परम्परा में 'अष्टयाम' की रचना की है जो दोहा, चौपाइयों में है। प्राणचन्द चौहान कृत संवाद प्रधान 'रामायण महानाटक (सन् १६१०ई०), हृदयराम कृत हनुमन्नाटक (सन् १६२३ई०) आदि भी उक्त परम्परा में आते हैं।

'रामचरितमानस' के प्रसिद्ध टीकाकार अयोध्या के जानकी घाट निवासी महंत रामचरण दास जिन्होंने पति-पत्नी भाव से उपासना का सूत्रपात किया।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि राम भक्ति की विशेषता के अन्तर्गत राम भक्त हनुमान जी की उपासना का प्रादुर्भाव हुआ। हनुमान जी की उपासना का सूत्रपात सर्वप्रथम स्वामी रामानन्द ने किया था। उनके मार्ग पर चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपनी अमृतमयी लेखनी से हनुमान जी की वन्दना की और लोकप्रिय नन्हीं सी पुस्तिका 'श्री हनुमान-चालीसा' और 'हनुमान बाहुक' एक छोटा सा स्वतंत्र काव्य सृजन किया। इस प्रकार रामकाव्य के अन्तर्गत हनुमान जी की उपासना का भी महत्त्व बढ़ गया। जगह-जगह मंदिरों में हनुमान जी की मूर्तियाँ स्थापित हो गयी और भगवान् राम की भाँति हिन्दू हृदयों में उनका भी प्रवेश हो गया। राम काव्य में राम से अधिक राम के दास हनुमान को महत्त्व देने वाला अंश उसकी विशेषता को चार चाँद लगा देता है।

साधना और लोकधर्म की व्यवस्था की दृष्टि से राम काव्य का जो महत्त्व है उसके अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टि से भी उसकी अपनी विशेषता है। कहा जाता है कि कृष्ण काव्य की भाँति रामकाव्य की परम्परा अधिक विकसित नहीं हुई। यह बात सत्य है और इसका कारण यह है कि गोस्वामी

तुलसीदास ने भगवान राम के पुनीत जीवन को भारतीय समाज के बीच जिस रूप में प्रस्तुत किया वह इतना मर्यादापूर्ण, इतना दिव्य, इतना कठोर, इतना गंभीर और इतना संयम-सापेक्ष था कि उसमें विकास के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा। उनकी रचनाओं के पश्चात् कई रामायणें लिखी गयीं पर वे समाहित न हो सकीं। उनकी प्रतिभा का प्रकाश सौ-डेढ़ सौ वर्ष तक ऐसा छाया रहा कि राम भक्ति की अन्य रचनाएँ भी उनकी रचनाओं की तुलना में स्थायित्व प्राप्त न कर सकीं।

राम के भक्तों ने नाम के दिव्य व्यक्तित्व को किसी मत विशेष के प्रभाव के अन्तर्गत न रख कर उसमें सभी मत-मतांतरों का समन्वय किया है। राम के व्यक्तित्व में उन्होंने जिस शक्ति,जिस शील और जिस सौंदर्य की सामहिक रूप से स्थापना की है वही आध्यात्कि पक्ष में भक्ति भावना और लौकिक पक्ष में सामाजिक भावना की जननी है। दुष्टों के संहार में राम की शक्ति का, पंडितों के उद्धार में राम के शील का और नर-नारियों को आकृष्ट करने में राम के दिव्य सौंदर्य का जो परिचय हमें राम काव्य में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

तो हाँ, दास्य भाव की भक्ति के उपासक गोस्वामी तुलसीदास ने, इसी कारण, एक स्थल पर स्वयं अपने इष्टदेव रामचन्द्र द्वारा कहलाया है।

सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवनत।।[१]
(किष्किन्धा काण्ड-रामचरितमानस)

अन्त में, यही कहा जा सकता है कि राम के काव्य में भक्तों के मन में मधुर भाव की उपासना का स्रोत बहाने वाला उनका अलौकिक सौंदर्य ही है। जहाँ कहीं राम गये, चराचर पर मोहिनी डाल दी।

यही कारण है कि खड़ी बोली हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक प्रबन्ध काव्य के प्रणेता, महा कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध' (१८६५-१९४७) ने तुसलीदास को श्रद्धांजलि अर्पित करतु हुए ठीक ही कहा है:-

कविता करके तुलसीदा लसे।
कविता लसी पा तुलसी की कला।।

इस आलेख को लिखने में कतिपय सन्त-महात्माओं का आशीर्वाद से शक्ति मिली। उनके पुनीत चरणों में मेरी यही याचना है कि राम भक्ति साहित्य में मेरी प्रीति बढ़ती रहे-

सीताराम चरण रति मोरे,
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।।

१. ह्वाट इज क्लासिक१,-टी. एस. इलियट।

-संस्थापक अध्यक्ष: रामायण प्रचार समिति
ग्राम+पो. राँकोडीह, वाया-कोशी कॉलेज-८५/२०५
जिला-खगड़िया (बिहार)

बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा

- ताराचन्द आहूजा

धर्माचार्यों का कथन है कि संसार में जन्म लेने वाली चौरासी लाख योनियों में सबसे उत्तम योनि मानव शरीर है। यह ऐसा दुर्लभ शरीर है जिसे मोक्ष की सीढ़ी कहा गया है, क्योंकि केवल इसी शरीर में ही भगवद् प्राप्ति हो सकती है।

मोह-हरण के लिए भगवान् शङ्कर के कहने पर जब भगवान श्रीहरि के वाहन श्रीगरुड़ जी काकभुशुण्डिजी के पास गए तो उनका पहला प्रश्न यही था कि जीवन के लिए सबसे दुर्लभ शरीर कौन-सा है? उत्तर में उन्होंने बताया कि मानव शरीर के समान संसार में कोई दूसरा शरीर नहीं है। ऐसे शरीर को धारण करके भी जो लोग श्रीहरि का भजन-सुमिरन नहीं करते, अधम विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को अपने हाथों से फेंकर काँच के टुकड़े चुनते हैं-

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर।
होहिं बिषय रत मदं मदं तर।।
काँच किरिच बदलें ते लेहीं।
कर ते डारि परस मनि देहीं।।

कहने का तात्पर्य यह है कि मानव जीवन भोगों के लिए नहीं मिला है। जो व्यक्ति अपने अमूल्य मानव जीवन को सांसारिक पदार्थों एवं भोगों के अर्जन, संग्रह और उपभोग में लगा देता है, उससे बड़ा अज्ञानी कोई नहीं है। अनेकानेक जन्मों में किए गए पुण्य-कर्मों तथा भगवान् की अहैतुकी कृपा से करोड़ों वर्षों की भोग-योनियों से निवृत्त होने के पश्चात् मानव शरीर मिलता है। उसे भोगों की भेंट चढ़ा देना कहाँ की बुद्धिमता है? भोगों के अर्जन एवं संग्रह में मनुष्य निरत है, चिंताग्रस्त अशांतचित तो रहता ही है, भोगासक्ति के कारण नए-नए पाप-कर्म भी करता रहता है। परिणामस्वरूप उसका इहलोक तो बिगड़ता ही है, परलोक भी बिगड़ जाता है। जिस प्रयोजन के लिए उसे मनुष्य शरीर मिला है, वह भी निष्फल हो जाता है। वह बार-बार नरकों तथा असुर योनियों में जाने का भागी बनता है। भगवान शङ्कर पार्वती जी से कहते हैं-

सुनहु उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।

अर्थात् वे लोग अभागे हैं जो हरि को छोड़ कर विषयों में रत रहते हैं। यदि धर्मशास्त्रों एवं महापुरुषों की बात को मानें तो भगवान का भजन करना इस मनुष्य शरीर का सर्वोपरि तथा एकमात्र करणीय कार्य है, परम पावन धर्म है। इससे श्रेष्ठ

कार्य अथवा धर्म और कोई नहीं हो सकता। गोस्वामी जी कहते हैं-

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग तप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर।।

अर्थात् इस कठिन कलिकाल में जबकि धर्म, ज्ञान, योग और जप का लोप हो रहा है, वास्तव में चतुर एवं सुजान वे ही लोग हैं, जो सब आशा-भरोसा छोड़कर भगवान श्रीराम का भजन कर लेते हैं। भगवान का भजन भक्ति का प्रधान अंग है। यह साध्य भी है और साधन भी। जो भगवत्प्रेम को प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए प्रभु का अखण्ड भजन नैसर्गिक हो जाता है और जिनको भगवत्प्रेम की प्राप्ति करनी है, उनके लिए अखण्ड भजन का अभ्यास करना अभीष्ट हो जाता है। जो मनुष्य भजन के बिना भक्ति और भगवत्प्रेम का अभिलाषी है, वह तो भारी भूल कर रहा है।

गोस्वामी जी कहते हैं-

बारि मथें घृत होई बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल।।

अर्थात् जल के मंथन से चाहे घी निकल आए, बालू रेत से चाहे तेल निकल आए परन्तु भगवान के भजन के बिना मनुष्य इस भवसागर से कभी पार नहीं हो सकता, यह सिद्धांत अकाट्य है। कहने का अभिप्राय है कि भजन मनुष्य के लिए अपरिहार्य है, भवसागर से तरने का अनिवार्य साधन है। फिर भक्ति के साधन के लिए तो यह विशेष रूप से जरुरी है। विषयों से मन हटाकर यदि भगवान् में न लगाया गया तो वह वापस लौट कर उन्हीं विषयों में ही रम जायेगा और जीवन का उद्देश्य ही निरर्थक हो जाएगा।

भगवान के भजन से ही मनुष्य को अनेक प्रकार के क्लेशों से निवृत्ति और आनंद की प्राप्ति संभव हो सकती है। भगवान राम के अनन्य भक्त काकभुशुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं-

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा।
बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा।।

महापुरुष समझाते हैं कि जिस प्रकार अग्नि में यह शक्ति है कि वह सब वस्तुओं को जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार भगवान के भजन में वह अद्‌भुत शक्ति है कि वह भक्त के समस्त संचित पाप कर्मों को भस्म कर देती है। इसमें कोई संशय नहीं है। अतः मानव जीवन की सार्थकता भगवान के भजन में ही निहित हैं।

धर्मशास्त्रों का कथन है कि मनुष्य को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि खोया हुआ धन, रूठा हुआ मित्र, पत्नी, दूसरों के द्वारा अपहृत सम्पत्ति-यह सब नश्वर पदार्थ तो आपको फिर भी मिल सकते हैं, लेकिन यह मूल्यवान् देव-दुर्लभ मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता। यह केवल एक बार ही मिलता है। अतः इस मानव शरीर की सार्थकता, महत्ता एवं मूल्यवत्ता को समझते हुए जीवात्मा को प्रत्येक क्षण भगवान के नाम का जप और चिंतन करना चाहिए, उनके

सुमिरन तथा भजन में ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए।

कितना ओजपूर्ण वचन है-'भूतकाल जो बीत गया है, न तो उसका शोक करो और न उसकी चिंता करो; उसकी चिन्ता अभी से करने से कोई लाभ नहीं जो अभी भविष्य के गर्भ में है, वरन् वर्तमान को सुधार लीजिए, सब ठीक हो जाएगा। वर्तमान को सुधारने से आशय है-भगवान् का भजन, जो अब तक नहीं किया गया है। भूल को सुधारना ही सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसलिए संतो ने जागने का संदेश दिया है-सदा जागते रहना ही सावधनी है। वस्तुतः सावधनी ही साधना है। इसलिए उपनिषद आज्ञा देता है-**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरान्निबोधत** अर्थात् हे मानव! उठो, जागो! आत्मबोध को प्राप्त करो। भगवान् को सदैव अपने साथ रखो। जीवन को भजनमय बना लो। वाणी से भगवान् का नाम, मन से भगवान् का चिंतन और शरीर से भगवान की सेवा-यह तीन बातें किसी के जीवन से उतर जाऐं तो उसका जीवन भजनमय हो जायेगा। असली भजन का अर्थ है-तन से, मन से और वाणी से भगवान का सेवन। संतो का कथन है कि हर समय भगवान को याद रखो। एक भगवान ही ऐसे हैं जो हमसे कभी दूर नहीं होते, कभी हमारा साथ नहीं छोड़ते, कभी हमें धोखा नहीं देते।

अतः मानव जीवन की सफलता इसी में है कि जब तक हमारा शरीर जीवित है, तब तक प्रभु का स्मरण बना रहे ताकि परम-चरम लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित हो सके। जो परमात्मा को विस्मरण करने की गुस्ताखी करते हैं, वे संसार का सब कुछ प्राप्त करके भी सुख-शांति से वंचित रहते हैं और सदा दुःखी , अंशात एवं परेशान रहते हैं।

एक संत ने बड़ा ही दिव्य संदेश मानवता के कल्याण के लिए दिया है-

जग का जीना है भला, जब लग हिरदय नाम।
नाम बिना जग जीवना, सो दादू किस काम।।
कई जन्मों के पुण्य से, पाई मनुषा देह।
मालिक की कर बंदगी, जन्म सफल कर लेह।।

- निदेशक धार्मिक पुस्तकालय, 4/114, एण.एफ.एस. अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर - 302020 (राजस्थान) मो. 8949344243

बोध कथा/ कहानी:

ईमानदारी स्वयं में ही एक बहुत बड़ा पुरस्कार है

– सीताराम गुप्ता

सुबह दस-सवा दस बजे के क़रीब जगमोहन वर्मा के बेटे अंकित का फोन आया। अंकित ने कहा कि पापा मुझे डेढ़ लाख रुपए चाहिएँ और आज ही। क्या आप रुपयों का प्रबंध कर सकोगे? अंकित ने कुछ दिन पहले ही अपना एक छोटा-सा व्यवसाय शुरू किया था। जगमोहन वर्मा जानते हैं कि अंकित को सचमुच पैसों की ज़रूरत होगी और वो कभी एक पैसा भी व्यर्थ में ख़र्च नहीं करता इसलिए मना करने का तो प्रश्न ही नहीं था। वैसे भी उनके पास इतने पैसे थे। घर में तो उनके पास सिर्फ़ दस हज़ार रुपए ही थे लेकिन बैंक में पर्याप्त पैसे थे। उन्होंने अंकित से कहा कि दोपहर तक पैसों की व्यवस्था हो जाएगी आकर ले जाना। जगमोहन वर्मा ने अपनी चैकबुक व पासबुक निकाली और बैंक की ओर रवाना हो गए। बैंक में उस दिन कोई विशेष भीड़-भाड़ नहीं थी।

जगमोहन वर्मा ने बैंक पहुँचते ही अपेक्षित राशि का चैक काटा, काउण्टर पर पासबुक के साथ चैक देकर टोकन लिया और कैश काउण्टर पर जा पहुँचे। संयोग से उस समय कैश काउण्टर पर भी अन्य कोई कस्टमर नहीं था। कैशियर अपने मोबाइल पर किसी से बातें कर रहा था। उसी समय चैक भी पास होकर कैशियर के पास आ पहुँचा। कैशियर ने काउण्टर पर खड़े जगमोहन वर्मा से टोकन माँगा, चैक पर उनके सिग्नेचर करवाए और मोबाइल पर बातें करते-करते ही उन्हें पेमेंट कर दी। जगमोहन वर्मा बाहर से ही कैशियर को नोटों की गड्डियाँ उठाकर गिनते हुए देख रहे थे। जैसे ही कैशियर ने पेमेंट दी जगमोहन वर्मा ने चुपचाप उसे अपने बैग में रखा और चल दिए। हड़बड़ी में उन्हें काउण्टर से पासबुक लेने का ध्यान भी नहीं रहा।

जगमोहन वर्मा ने एक लाख चालीस हज़ार रुपए निकलवाए थे। वो देख रहे थे कि कैशियर ने पहले हज़ार के नोटों की एक गड्डी उठाई, फिर पाँच सौ के नोटों की एक गड्डी उठाई और अंत में हज़ार-हज़ार के दस नोट गिनकर पूरी रक़म जगमोहन वर्मा को दे दी। उन्हें पता था कि कैशियर ने एक लाख चालीस हज़ार रुपए देने के बजाय एक लाख साठ हज़ार रुपए उन्हें दे दिए हैं लेकिन उन्होंने ये आभास कराते हुए कि उन्होंने पैसे गिने ही नहीं और कैशियर की ईमानदारी पर उन्हें पूरा भरोसा है चुपचाप पैसे रख लिए। अब भला इसमें उनका क्या दोष था? इसमें उनका कोई दोष था या नहीं लेकिन पैसे बैग में रखते ही

फालतू पैसों को लेकर उनके मन में उधेड़-बुन शुरू हो गई।

एक बार जगमोहन वर्मा के मन में आया कि फालतू पैसे वापस लौटा दूँ लेकिन दूसरे ही पल उन्होंने सोचा कि जब मैं ग़लती से किसी को फालतू पेमेंट कर देता हूँ तो मुझे कौन लौटाने आता है? वैसे खूब ज़ोर डालने पर भी उनके दिमाग़ में ऐसा कोई वाक़िआ नहीं आया जब ग़लती से उन्होंने फालतू पेमेंट कर दी हो और फालतू पैसे वापस न मिले हों। हाँ, उन्हें याद आया कि इसी कैशियर ने कई बार उन्हें इतने गंदे नोट दिए हैं कि उन्हें चलाने में उनको बहुत मुश्किल हुई थी। इनकी ग़लतियों का ख़मियाजा हमें न जाने कितनी बार भुगतना पड़ा है एक आध बार ये खुद भी तो भुगतें। फिर इसकी ग़लती में मेरा क्या क़सूर है? मैंने थोड़े ही कोई बेईमानी की है?

जगमोहन वर्मा जानते थे कि ये जो बीस हज़ार रुपए कैशियर ने ज़्यादा दे दिए हैं कैशियर को अपनी जेब से भरने पड़ेंगे लेकिन इसमें दोष उसी का है। कैश काउण्टर पर इतनी ग़फ़लत? काम के वक़्त मोबाइल पर बातें करते रहेंगे। सरकारी समय का दुरुपयोग करते रहते हैं ये उसी की सज़ा है। ये भी तो भ्रष्टाचार का ही एक रूप है। दोषी को सज़ा मिलनी ही चाहिए। लेकिन यदि ग़लती से पैसे ज़्यादा आ गए तो उन्हें न लौटाना भी तो ग़लती ही है। फालतू पैसे न लौटाने पर मुझे भी तो सज़ा मिल सकती है। लेकिन मैंने चोरी थोड़े ही की है, कोई ग़बन थोड़े ही किया है जो मुझे सज़ा मिले। वैसे भी दूसरों की ग़लती की सज़ा मुझे क्यों मिले? कई बार मन में आया कि पैसे लौटा दें लेकिन हर बार कोई न कोई बहाना या कोई न कोई वजह मिल जाती पैसे न लौटाने की।

हर बहाने के साथ उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। बिना चोरी किए चोर की सी हालत हो रही थी। तनाव बढ़ता ही जा रहा था। यदि सब कुछ ठीक है और मैंने कुछ भी ग़लत नहीं किया है तो मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है? अचानक जगमोहन वर्मा के दिमाग़ में एक बात आई। ऐसी घटनाएँ जीवन में रोज़-रोज़ थोड़े ही होती हैं। हो सकता है कि ऐसी कोई भी घटना जीवन में दोबारा हो ही नहीं। माना कि बीस हज़ार रुपए का कैशियर पर भी शायद कोई ख़ास असर न पड़े लेकिन जीवन में केवल एक इस घटना के लिए मैं पूरी उम्र अपराधबोध से दबा रहूँगा।

बार-बार मन में आता रहेगा कि तुम किसी की ग़लती से फ़ायदा उठाने से नहीं चूकते और ऊपर से बेईमान न होने का ढोंग भी करते हो। क्या यही ईमानदारी है? उन्होंने बैग में से बीस हज़ार रुपए निकाले और जेब में डालकर बैंक की ओर चल दिए। उसकी बेचैनी और तनाव कम होने लगा था। वह हल्का और स्वस्थ अनुभव कर रहे थे। वो कोई बीमार थोड़े ही थे लेकिन उन्हें लग रहा था जैसे उन्हें किसी बीमारी से मुक्ति मिल गई हो। उनके चेहरे पर किसी जंग को जीतने जैसी

प्रसन्नता व्याप्त हो गई थी।

जैसे ही जगमोहन वर्मा बैंक पहुँचे वहाँ कैशियर हिसाब न मिलने के कारण परेशान हो रहा था। जगमोहन वर्मा ने जाते ही बीस हज़ार रुपए कैशियर के हाथों में देते हुए कहा, ''भाई साहब मोबाइल पर ही मत चिपके रहा करो हर समय। इसी चक्कर में आपने मुझे बीस हज़ार रुपए फालतू दे दिए वही लौटाने आया हूँ।'' रुपए पाकर कैशियर ने चैन की सांस ली। उसने जगमोहन वर्मा का कई बार धन्यवाद किया और अपनी जेब से हज़ार रुपए का एक नोट निकालकर उन्हें देते हुए कहा, ''भाई साहब आपका बहुत-बहुत आभार! आज मेरी तरफ से बच्चों के लिए मिठाई ले जाना। प्लीज़ मना मत करना।'' ''भाई आभारी तो मैं हूँ आपका और आज मिठाई भी मैं ही आप सबको खिलाऊँगा,'' जगमोहन वर्मा ने कहा।

कैशियर ने पूछा, '' भाई आप किस बात का आभार प्रकट कर रहे हो और किस खुशी में मिठाई खिला रहे हो?'' जगमोहन वर्मा ने जवाब दिया, ''आभार इस बात का कि आपने मुझे आत्म-मूल्यांकन का अवसर प्रदान किया। आपसे ये ग़लती न होती तो न तो मैं द्वंद में फँसता और न ही उससे निकल कर अपनी लोभवृत्ति पर क़ाबू पाता। यह बहुत मुश्किल काम था। घंटों के द्वंद के बाद ही मैं जीत पाया। दुर्लभ होते हैं जीवन में ऐसे अवसर। इस रूपांतरणकारी दुर्लभ अवसर को प्रदान करने के लिए आपका बारंबार आभार। आज आपकी ग़लती ने मेरे लिए सचमुच उत्प्रेरक तत्त्व की भूमिका निभाई है।''

तभी बैंक मैनेजर भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने कहा, '' वर्मा साहब आप धन्य हैं! कहाँ तो वो लोग हैं जो अपनी ईमानदारी का पुरस्कार और प्रशंसा पाने का अवसर नही चूकना चाहते और कहाँ आप जो स्वयं ईमानदारी पर चलने के बाद भी औरों को पुरस्कृत कर रहे हो।'' ''मैनेजर साहब, ईमानदारी का कोई पुरस्कार नहीं होता। मैं तो यही अनुभव कर रहा हूँ कि ईमानदारी स्वयं में एक बहुत बड़ा पुरस्कार है। ऐसे अवसर भी जीवन में सौभाग्य से ही मिलते होंगे'', ये कहकर जगमोहन वर्मा मिठाई मँगवाने के लिए अपनी जेब से पैसे निकालने लगे।

ए. डी. 106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली - 110034

मो. नं. 9555622323

पुस्तक समीक्षा

–प्रो. प्रेमलाल शर्मा

प्राचीन भारत में गुप्तचरी

–डॉ संदीप तिवारी

[३२०ई. पू. से ६०० ई. तक]

निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,

आगरा–१०;

मूल्य: रु.८००/– मात्र,

प्र.संस्करण सन् २०२२, पृ. सं. २००

मौर्य और गुप्तकाल के इतिहास में प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। यह सब तत्कालीन राज सत्ताओं के कारण ही सम्भव हो सकता है।

साहित्य में विदित ही है कि राजसत्ता की धुरा सुदृढ़ गुप्तचरी व्यवस्था पर निर्भर होती है। प्राचीन भारतीय राजा को सहस्रबाहु विशेषण से परिभाषित रकने में यही रहस्य है। यही कारण है कि आज भी राष्ट्र की भौगोलिक, सामाजिक तथा आर्थिक जैसे तत्त्वों के संरक्षण का दायित्व गुप्तचरी पर ही निर्भर है।

प्रत्येक काल खण्ड में हर एक राष्ट्र के गुप्तचरों द्वारा प्राचीन तथा समकालीन उपकरणों द्वारा क्योंकि अभीष्ट सूचना प्राप्त करना धेय हुआ करता है इसीलिए भारतीय प्राचीन गुप्तचरी से सम्बद्ध सुदृढ़ शास्त्र कोटिल्य का 'अर्थशास्त्र' को बड़ा सम्मान मिलने का कारण भी उपर्युक्त घटक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

यद्यपि प्राचीन काल से लेकर गुप्तचर व्यवस्था के बीज अनेकों साहित्य ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं तथापि डॉ. संदीप तिवारी ने एक विशिष्ट काल खण्ड ३००ई.पू. से ६०० ई. पर्यन्त) लेकर एक तथ्यपरक ग्रन्थ लिखकर पाठकों पर बड़ा उपकार किया है।

आचार्य चाणक्य के अनुसार गुप्तचर्या के दो आधार स्तम्भ हैं–स्थायीगुप्तचर और आकस्मिक (अस्थाई) गुप्तचर। इन्हीं के द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द साम्राज्य उखाड़ फेंका था। गुप्तचर्या शासन तन्त्र की इतनी महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है जो राष्ट्र के अन्दर और बाहर होने वाली अनुकूल तथा प्रतिकूल समस्त गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुये होती है। गुप्तचर्या में 'चर या चार तथा दूत' इन शब्दों का प्राचुर्येण प्रयोग देखा गया है। कौटिल्य, कामन्दक, याज्ञवल्क्य आदि ने इनका विशेष वर्णन अपने–अपने ग्रन्थों में किया है। जहाँ दूत प्रकाश में काम करता है। वहीं चर (गुप्तचर) छुपकर अपनी गतिविधियाँ किया करते हैं। दूत का विशिष्ट स्थान होता है और गुप्तचर का अन्तर्निहित वैशिष्ट्य है। इसलिए गुप्तचरी के कारण शासक को 'चारचक्षुष' नाम से भी जाना जाता है। आधुनिक भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृति में इन्हें 'गुप्तचर'/ 'स्पाई' नाम से जाना जाता है।

अग्निपुराण, विष्णुपुराण, कालिदास, भारवि आदि के साहित्य में यत्र तत्र 'चर' तथा चारचक्षुष ये नाम अनेक बार अभिहित किये गये हैं।

अशोक के शिलालेख तथा स्तम्भ गुप्त सम्राटों के अभिलेख तथा कल्हण जैसे आदर्श लेखकों की लेखनी भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने के साथ-साथ प्राचीन गुप्तचर्या पर भी प्रकाश डालते हैं।

रामायण तथा महाभारत कालीन समाज में गुप्तचरी संस्कृति का उल्लेख मिलने से स्पष्ट है कि गुप्तचर्या राजशासन तंत्र का आवश्यक अङ्ग सर्वमान्य रहा है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र जिसमें साम, दाम, दण्ड, भेद जैसे विषयों को लेकर राजनीति और कूटनीति के कई आयामों पर प्रकाश डाला गया है। यही कारण है उत्तर कालीन शासन तन्त्र ने इसी व्यवस्था का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है।

इस ग्रन्थ में कुल सात अध्याय हैं, जिनमें प्रथम अध्याय में ऐतिहासिक स्रोत और साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं। इस अध्याय की विषय-वस्तु पर एक पूरा इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो कि अनपेक्षित है। अच्छा होता कि प्रथमाध्याय में वर्णित विषय को मात्र 'भूमिका या प्राक् कथन' के अन्तर्गत रख कर अभीष्ट प्रतिपाद्य यथावत प्रस्तुत किया जाता और कुल छः अध्यायें में अभीष्ट सभी विषय समाहित हो जाते!

द्वितीय अध्याय में वैदिक काल से लेकर जैन-बौद्ध काल पर्यन्त गुप्तचर व्यवस्था आधुनिक शासनतन्त्र के सदृश-सुदृढ हुआ करती थी- ऐसा विवेचन विद्वतापूर्ण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय से लेकर षष्ठ अध्याय तक गुप्तचर के स्वरूप और उनके भेद, गुप्तचरों के कार्य तथा वेतन, गुप्तचरी के कार्यक्षेत्र और उनकी कार्य शैली जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विद्वतापूर्ण प्रकाश डाला गया है। और अन्त में, सप्तम अध्याय में शासन तन्त्र में गुप्तचरी की अपरिहार्यता जैसे विषय पर बल दिया गया है जो कि श्रेयस्कार्य है।

परिशिष्ट में सहायक ग्रन्थ सूची और 'डॉ यायावर का कृत्वित्व एवं विहंगम दृष्टि' विषय पर चर्चा है। यहाँ लेखक का मन्तव्य भी स्पष्ट है- अपने आदरणीय श्वसुर और विद्वान् यायावर जी को विद्या के क्षेत्र में अवदान पर प्रकाश डालना, ताकि पाठकों को लाभ मिल सके। जो कि स्तुत्य कृत्य है। पुस्तक की साज-सज्जा मनोहर है।

-प्रो. प्रेमलाल शर्मा, सह-सम्पादक विश्वज्योति एवं विश्व संस्कृतम्
वी.वी.आर, आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।

पुस्तक समीक्षा

–प्रो. प्रेमलाल शर्मा

[विष्णु: ब्रह्माण्ड व्यापिनी तेज]

* **शोध एवं संकलनकार्य-द्वारा राम शास्त्री**
* **प्रकाशक: राष्ट्रिय आध्यात्मिक पुनर्जागरण अभियान, ७१, आर्य नगर, अलवर ३०१००१, राजस्थान वि.सं. २०८२।**
* **पृ. संख्सा ५४४, मूल्य अनिर्दृष्ट।**

ग्रन्थ जो कि शोधपरक एवं संकलन-कार्य पर आधारित है। समग्र ग्रन्थ का प्रतिपाद्य वैदिक विष्णु देवता है, जो कि ब्रह्माण्डव्यापिनी सौर तेज अर्थात् सौर ऊर्जा से अभिप्रेत है। और, यही सौर शक्ति समस्त चराचर जगत् में अभिव्यक्त हो रही है।

अपने प्रतिपाद्य विषय के समर्थन में पुस्तक के प्रारम्भ में ८४-८५ पन्नों में भारतीय संस्कृति की छाप वाले विभिन्न देशों में उपलब्ध प्राचीन विष्णु की मूर्तियों के फोटोग्राफ दिये गये हैं और उसके बाद 'विष्णुः परमेष्ठी' तत्त्व का स्वारस्य अंग्रेजी में भी दिया गया है ताकि अंग्रेजी भाषा-विज्ञ भी उसे सरलता से, संक्षेप में ही सही, बोध कर सकें। उसका अंग्रेजी भाषानुवाद हिन्दी में भी दे दिया गया है जो कि एक प्रशस्य कार्य है।

विषय सूची में 'विष्णु', वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषत् से लेकर तन्त्रागम पर्यन्त किस-किस रूप में उपास्य है इस सन्दर्भ को लेकर '८४ ,चौरासी विषय' बहुत ही बौद्धिक परिश्रम द्वारा वर्णित हैं। निश्चित ही ये सभी वैदिक/अवैदिक संस्कृति के अनुरागियों को पढ़ना चाहिए।

ग्रन्थ में प्रतिपादित सभी विषय शोध की दृष्टि से नवीन-नवीन उद्भावनायें लेकर शोधार्थियों के लिए एक प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत करेंगे।

अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के साथ-साथ यज्ञ विद्या, वरुण विद्या, पृथिवी विद्या, आकाश विद्या आदि से सम्बद्ध प्राचीन परिकल्पनाओं से ओत-प्रोत चित्र भी संगृहीत हैं इससे शोधार्थियों को निश्चित ही नई दिशा मिलेगी।

इसी परम्परा में श्री राम शास्त्री द्वारा उपर्युक्त विष्णु विद्या के समान ही क्रमशः संवत् २०७९ और संवत् २०८१ में 'आकाश विद्या' तथा 'वायु विद्या' नाम से प्रायः विष्णुविद्यावत् संकलन कार्यात्मक शोध ग्रन्थ तदाकारवत् प्रकाशित किये जा चुके हैं जो कि भारतीय संस्कृत साहित्य और संस्कति के प्रचार-प्रसार के लिए एक सुदृढ़ नीव के रूप में प्रमाणित होगें और शोधार्थियों के लिए एक पथप्रदर्शक भी सिद्ध होंगे।

-प्रो. प्रेमलाल शर्मा, सह-सम्पादक विश्वज्योति एवं विश्व संस्कृतम्
वी.वी.आर, आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।

गर्मी का ताड़व

– शशिप्रभा कुकरेती

हर मानव गर्मी से था बेहाल, गर्मी का देखा सबने रूप प्रचण्ड,
पेड़ बरर्वता से काटे जा रहे, धरती माँ आँचल बाँटे जा रहे हैं।
धरा हमारी कराह रही है, हम सोच रहे गर्मी हमें डरा रही है,
तापमान का कोई दोष नहीं, इन्सानों को खुद ही होश नहीं।
खुद की करनी भोग रहे हैं, अन्तर मन से सब रो रहे है,
धरती माँ का आँचल कर सूना, बनादी ऊँची महल अटारी।
अपने को समझने लगे बादशाह, दिन प्रतिदिन हो रहे खोखले,
भवन बन गये गगन चुम्बी, ठाट-बाट का बिगुल बज रहा।
फिर मन में एक नयी सोच जगी, फिर रेन्ट का लालच मन पर छाया,
जो थोड़े पेड़ खुशी से झूम रहे थे, हमने उन्हें भी आहत कर डाला।
वायु-जल और भूमि के प्रति मानव-तिरस्कार भरा व्यवहार है दर्शाता,
मानवता का हनन हो रहा, व्यथित सभी हैं मौन सह रहे।
दूषित हो गया धरा का हर-कण्र, कैसे सम्भव होगा अब जीवन,
धरती अपना यौवन ढूंढ रही है, गमलों में ही सिमट गये हम।
अंतिम साँसे ले रही धरा हमारी, इसे हमें बचाना होगा,
वाहनों की अति होड़ लगी है, प्रदूषण भी सिर चढ़ बोल रहा।
उसके दो मैं चार खरीदू, ऐड़ी उठा कर मैं बड़ा बनू,
झूठी शान के पीछे मत भागें, बेमतलव का गुरुर इसे हम त्यागें।
हवा-पानी वेवस होकर, किसी दिन लुप्त हो जायेगे,
बंगला-गाड़ी धन और दौलत, धरी की धरी रह जायेगी।
हम भूमिपुत्र-पुत्रियाँ हैं, इस धरा माँ को, बचाने का संकल्प उठायें,
पेड़ लगायें धरती बचायें, अपने भविष्य के प्रति सचेत हो जायें।।

स पुमानर्थजन्मा यस्य नास्ति पुरः स्थिते।
नान्यामङ्गुलिमभ्येति संख्यायामुद्यताङ्गुलिः॥

किरातार्जुनीयम्, 11.62.

इस मृत्युलोक में अच्छे पुरुषों की गिनती के समय, सर्वप्रथम जिसके नाम की गणना होने पर दूसरे के नाम के लिए ऊँगली उठती ही नहीं, उसी व्यक्ति का जन्म सार्थक है।

With best compliments from

Dr. K.K. Sharma

President, Suman Memorial Society

38-L, Model Town,
Hoshiarpur-146001

उपकारषिु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

संस्कृत-लोकोक्तिसंग्रह

उपकार करने वाले के साथ जो उपकार करता है, वह तो सत्पुरुष है ही, पर जो बुराई करने वाले के साथ भी भलाई करता है, वह उससे भी बड़ा सत्पुरुष व सज्जन कहलाता है।

समस्तजन की मंगलकामना-हेतु

प्रयोजिका :

श्रीमती अरुणा सूद

निकट गांधी लाइब्रेरी,
बहादुरपुर, होशियारपुर।

सत्संग मन्दिर

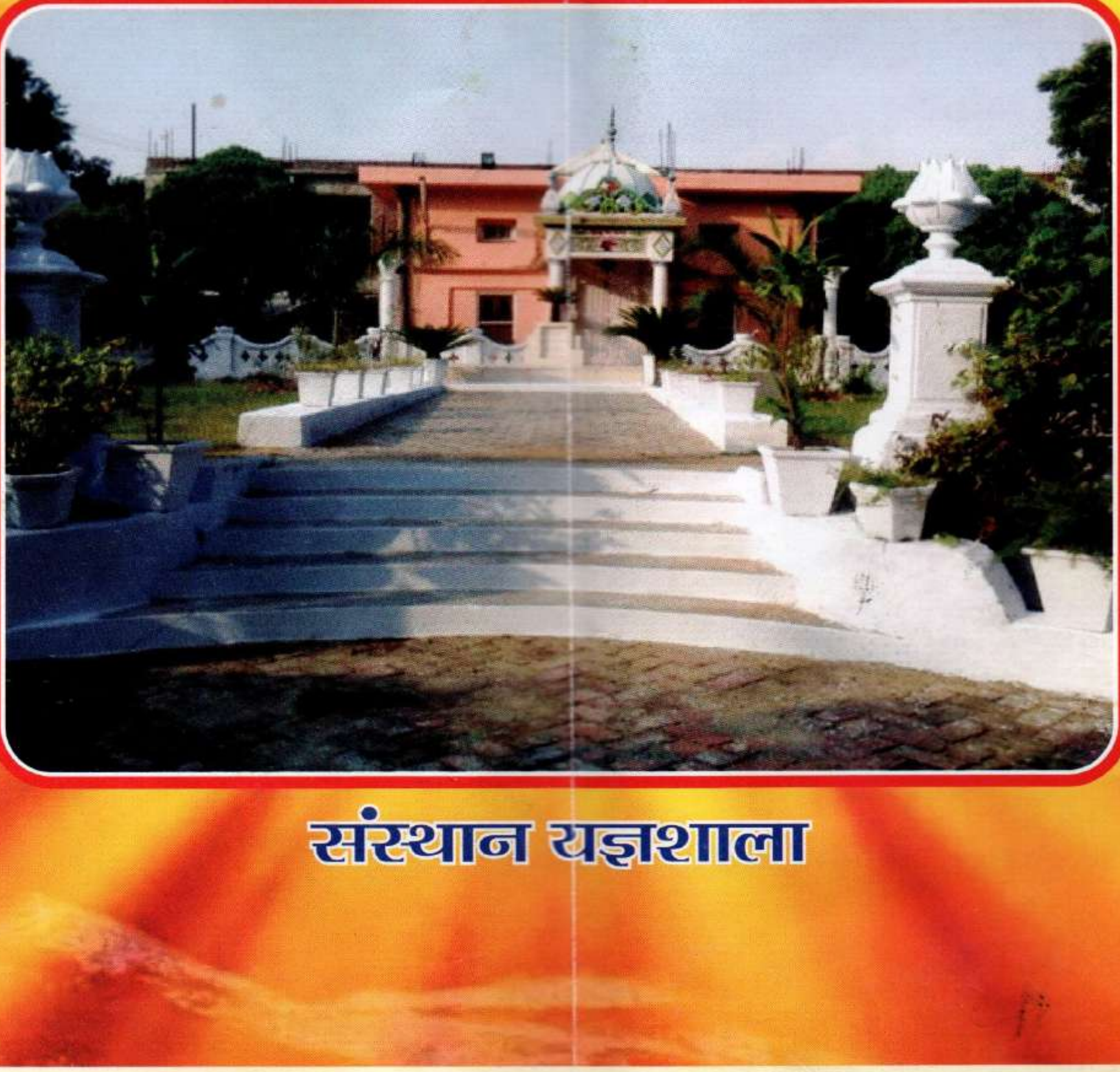

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०८-२०२५ को प्रकाशित।